भिखारी ठाकुर : भोजपुरी के भारतेन्दु

भगवतीप्रसाद द्विवेदी

आशु प्रकाशन
११४३/३१, पुराना कटरा, इलाहाबाद

भिखारी ठाकुर : भोजपुरी के भारतेन्दु

(भगवतीप्रसाद द्विवेदी के शोध-परक आधिकारिक लेखों का संग्रह)

ISBN 81-85377-41-3

प्रकाशक
आशु प्रकाशन
1143/31, पुराना कटरा
इलाहाबाद - 211 002

प्रथम संस्करण :
सन् 2000 ईस्वी

मूल्य :
एक सौ रुपये

आवरण
आर०एस० अग्रवाल
इम्पैक्ट, इलाहाबाद

अक्षर संरचना
दुर्गा कम्प्यूट्रॉनिक्स
735/1, जायसवाल मार्केट,
पुराना कटरा, इलाहाबाद

मुद्रक
भार्गव प्रेस
11/4, बाई का बाग
इलाहाबाद

दादी,
बड़े बाबूजी, रामकाली दूबे,
बड़ी अम्मां, मुनीश्वरी देवी,
और
माँ
की
पुण्य स्मृति को!

अनुक्रम

प्राक्कथन	६
उपोद्घात	१३
एक सम्पूर्ण मनुष्य की निश्छल जीवन-यात्रा	२३
अमर कृति 'विदेसिया' और विदेसिया शैली की रमणीयता	३६
लोकनाटकों में सामाजिक चेतना की सुगबुगाहट	४६
जनकवि का संत-हृदय	५७
भिखारी और उनकी नृत्यमंडली	६६
नारी विषयक प्रगतिशील दृष्टिकोण	७६
भोजपुरी और भिखारी	८२
परिशिष्ट-१ : भिखारी के चंद गीतों की दानगी	८७
परिशिष्ट-२ : भिखारी ठाकुर : संक्षिप्त जीवन-वृत्त	१०२
परिशिष्ट-३ : भिखारी-साहित्य	१०४
परिशिष्ट-४ : भिखारी पर प्रकाशित महत्वपूर्ण आलेख	१०६

प्राक्कथन

गोस्वामी तुलसीदास व कबीर के बाद यदि लोकभाषा के किसी कवि-कलाकार को सम्पूर्ण उत्तरभारत के जन-जन में प्रचण्ड लोकप्रियता मिली, तो वह थे भिखारी ठाकुर। भिखारी का अभ्युदय उस समय हुआ, जब देश की आम जनता विदेशियों की त्रासद दासता झेलने के साथ ही अज्ञानता, सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वास व रूढ़ियों की बेड़ियों में बुरी तरह जकड़ी हुई थी। सर्वाधिक बुरी स्थिति नारियों की थी, जो खूंटे से बंधी गाय की तरह बाल विवाह, बेमेल विवाह का शिकार हो, विधवा का जीवन जीने के लिए अभिशप्त थीं। भिखारी ने अत्यन्त निर्धन नाई परिवार में जन्म लेकर न सिर्फ समाज के दबे-कुचले वर्ग का प्रतिनिधित्व किया, बल्कि मुख्य रूप से आधी आबादी की बदहाली को ही अपनी सृजनधर्मिता का विषय बनाया। वह लोकभाषा की अकूत क्षमता से बखूबी परिचित थे, तभी तो निरक्षर होने के बावजूद जन-जन तक पहुंचने के लिए उन्होंने अपनी मातृभाषा भोजपुरी में न केवल सबसे पहले लोकनाटकों का प्रभावोत्पादक प्रणयन व मंच-प्रस्तुति की, वरन लोकशैली 'विदेसिया' के प्रवर्तक के रूप में भी प्रख्यात हुए। लोकनाटककार, जनकवि, अभिनेता, निर्देशक, सूत्रधार आदि अनेक मौलिक गुणों से सम्पन्न भिखारी सबसे पहले मनुष्य थे—मनुष्यता की कसौटी पर खरे उतरने वाले शत-प्रतिशत मनुष्य।

भिखारी ने भोजपुरी को अभूतपूर्व ऊँचाई, गहराई व विस्तार दिया। खाँटी माटी और जनजीवन से जुड़ा उनका साहित्य जनसामान्य का कंठहार बन गया तथा भोजपुरी व भिखारी—दोनों एक-दूसरे के पूरक-से हो गये। अपनी नृत्यमंडली के माध्यम से भिखारी धूमकेतु-से छा गये और ज्यों-ज्यों वक्त गुजरता जा रहा है, भिखारी के व्यक्तित्व-कृतित्व की चमक और भी बढ़ती ही जा रही है। वह सही मायने में संत थे और उनके काव्य में भक्तिकालीन कविताओं की कई खासियतें एक साथ मौजूद हैं।

मगर भिखारी को उनके जीवनकाल में 'नचनिया' का संबोधन और उपेक्षा

ही प्रबुद्ध वर्ग से मिलती रही थी। आज भी उनका और उनके सृजन का सार्थक मूल्यांकन होना शेष है।

बचपन में ही मेरे गांव के आत्मीय बाबा, मथुरा प्रसाद तिवारी और गांव के ही चाचा, बलराम शर्मा ने भिखारी के भजन-गीतों को गाकर और उनसे जुड़े संस्मरण सुनाकर मेरे जिज्ञासु मन की प्यास बढ़ा दी थी। आगे चलकर लेखन के जरिये पत्र-पत्रिकाओं से आत्मीय जुड़ाव होने के बाद मैंने 'धर्मयुग' के तत्कालीन संपादक डॉ० धर्मवीर भारती के आदेश-निर्देश पर भाई विनय बिहारी सिंह (वरिष्ठ उप संपादक : जनसत्ता) के साथ भिखारी के गांव कुतुबपुर का दौरा किया, उनके पुत्र-परिजनों से मुलाकात की और पाया कि आज भी अपने गांव की माटी और ईंट-ईंट में रचे-बसे हैं भिखारी। 'धर्मयुग' में जब वह आलेख प्रमुखता के साथ प्रकाशित-प्रशंसित हुआ तो मेरा हौसला बढ़ा और 'कादम्बिनी', 'हिन्दुस्तान', 'जनसत्ता' आदि पत्र-पत्रिकाओं में भिखारी और उनके साहित्य पर विभिन्न कोणों से निबन्ध लिखे। वह क्रम आज भी जारी है।

बिहार के चर्चित किन्तु दिवंगत साहित्यकारों के जीवन और साहित्य पर निबन्ध प्रकाशित करने की बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की योजना को कार्यरूप देने के मद्देनजर तत्कालीन निदेशक के आदेश पर मैंने 'लोकनाटककार-जनकवि-संत भिखारी ठाकुर' शीर्षक पुस्तक की पांडुलिपि परिषद् को जनवरी, १९९५ में उपलब्ध करा दी थी जिसके प्रकाशन के सम्बन्ध में परिषद् निदेशक के पत्रांक ३५९ दि. ७.७.९५ के द्वारा मुझे स्वीकृति प्राप्त हुई थी। उपर्युक्त पत्र में भाषण माला योजना के अन्तर्गत देय मानदेय तथा रॉयल्टी के नियमों से अवगत कराते हुए मेरी सहमति मांगी गयी थी। मैंने अपने पत्र में औपचारिक स्वीकृति प्रदान करते हुए अनुबंध पर उभय पक्ष के हस्ताक्षर करने की तिथि निर्धारित करने का अनुरोध किया था जिसके संदर्भ में निदेशक ने मौखिक सूचना दी थी कि परिषद् की परम्परा के मुताबिक, मुद्रण हेतु पांडुलिपि के प्रेस में जाने के तत्काल बाद अनुबंध कर लिया जाएगा। लंबी अवधि गुजर जाने के बाद विश्वस्त सूत्रों से अचानक मुझे सूचना मिली कि मेरी पांडुलिपि का बेजा इस्तेमाल होने जा रहा है। सुनते ही मेरा माथा ठनका और मैंने 'आज' (पटना) के तत्कालीन संपादक को बताकर पांडुलिपि की छाया प्रति धारावाहिक प्रकाशन हेतु दे दी। जब मैंने अपनी पांडुलिपि के प्रकाशन के बारे में परिषद्-निदेशक से पूछताछ की तो उन्होंने बताया कि वह स्वयं भिखारी ठाकुर पर पुस्तक लिखने का मन बना रहे हैं और उनकी पुस्तक तैयार न हो पाने की स्थिति में ही मेरी पुस्तक का प्रकाशन परिषद् से हो

सकेगा। मैंने सवाल किया कि जब उन्हें खुद पुस्तक तैयार करनी थी तो फिर उन्होंने मुझसे इस बाबत क्यों अनुरोध किया जिसके साक्षी कथाकार कृष्णानन्द कृष्ण भी रहे हैं। जब मैंने स्वीकृति-पत्र का हवाला दिया तो उन्होंने मौनव्रत धारण कर लिया। मगर जब उन्हें 'आज' में धारावाहिक प्रकाशन की सूचना मिली तो मुझे फोनकर पूछा कि मैंने बगैर परिषद् की अनुमति के पांडुलिपि धारावाहिक प्रकाशन हेतु क्यों दे दी। मैंने बताया कि मैंने परिषद् को कॉपीराइट नहीं दिया है और प्रकाशन संस्थान के लिए तो यह अच्छी बात होती है कि पुस्तक छपने के पूर्व ही पत्र-पत्रिका में प्रकाशित होकर चर्चा के केन्द्र में रहे। निदेशक ने मेरी दलील मानने से इनकार करते हुए मुझे एक-दो रोज में पांडुलिपि लौटाने की बात कही। परिषद्-सूत्रों से सूचना मिली कि धारावाहिक प्रकाशन के बाद अब न वह छपेगी, न मुझे लौटाई ही जाएगी। महीनों गुजर जाने पर भी जब मुझे पांडुलिपि नहीं मिली तो मैंने निदेशक को फोन किया। उन्होंने कहा कि मैं लिखकर आग्रह करूं कि मेरी पांडुलिपि लौटा दी जाय। मैंने बताया कि मैंने तो पांडुलिपि प्रकाशित करने हुते परिषद् को दी थी, निदेशक खुद लिखकर दें कि किन परिस्थितियों में वह मेरी स्वीकृत पांडुलिपि लौटा रहे हैं। इस संदर्भ में मेरे स्मार-पत्रों का भी कोई उत्तर नहीं मिला। बहरहाल, मैं कृतज्ञ हूं लब्धप्रतिष्ठ कथाकार व वर्तमान निदेशक डॉ० रामधारी सिंह दिवाकर का, जिनके सौजन्य से मुझे मेरी पांडुलिपि प्राप्त हुई।

मैं आभारी हूँ 'आज' (पटना) के तत्कालीन संपादक अविनाशजी मिश्र (संपादक : समकालीन तापमान) का, जिन्होंने 'आज' के परिशिष्ट 'दृष्टि' में पांडुलिपि का धारावाहिक प्रकाशन कर मुझे सुधी पाठकों-समीक्षकों की भरपूर सराहना दिलवायी, वहीं पुस्तक को किसी दूसरे के नाम से प्रकाशित होने से बचा लिया। पूरे मामले को दैनिक पत्रों में प्रमुखता से स्थान दिलाने के लिए 'आज' के संपादक चन्द्रेश्वर और 'प्रभात खबर' के प्रधान संपादक हरिवंश जी के साथ ही मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ उन शताधिक साहित्यकारों-शुभचिन्तकों का जिन्होंने इस संघर्ष में खुलकर मेरा साथ दिया।

आदरणीय डॉ० रघुवंशमणि पाठक ने अपनी शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद जिस हार्दिकता और सहृदयता से पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझे प्रोत्साहित किया, उसके लिए मैं किन शब्दों में आभार प्रकट करूं! मुझे पूरा विश्वास है, मुझे उनका आत्मीय स्नेह सदा मिलता रहेगा। अग्रज डॉ० अभय मित्र का अपनत्व पुस्तक के पृष्ठ-पृष्ठ पर परिलक्षित होता है। आभार बन्धुवर!

प्रस्तुत पुस्तक में भिखारी के जीवन और सर्जना के विविध आयामों पर रोशनी डालने की विनम्र कोशिश की गयी है। साथ ही, उनके कुछेक गीतों को बतौर बानगी प्रस्तुत किया गया है। जो गीत, पुस्तक में किसी-न-किसी रूप में उद्धृत किये जा चुके हैं, उन्हें पुनरावृत्ति के लिहाज से 'गीतों की बानगी' के तहत शामिल नहीं किया गया है। ये गीत 'भिखारी ठाकुर ग्रंथावली' से साभार प्रस्तुत हैं।

भिखारी-साहित्य के अध्येता अविनाश चन्द्र विद्यार्थी, नागेन्द्र प्रसाद सिंह तथा वर्तमान महामंत्री कृष्णानन्द कृष्ण का मैं आभारी हूँ, जिन्होंने पुस्तक के लिए महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराकर मुझे प्रोत्साहित किया। कदम-कदम पर मेरा उत्साहवर्द्धन करने वाले पाण्डेय कपिल, सत्य नारायण, रामनिहाल गुंजन, प्रो० ब्रज किशोर, अनिल विभाकर के प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रस्तुत कृति सादगी, सज्जनता व सहृदयता के प्रतीक, भिखारी ठाकुर के पुत्र वयोवृद्ध शिलानाथ जी के हाथों में सौंपते हुए मैं स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रहा हूँ।

☐ भगवती प्रसाद द्विवेदी

पटना
२६ जनवरी, १९९९

उपोद्घात

जीवन के अभाव-छिद्रों को आत्मस्वर की रागिनी से भरने हेतु चेतना जब विकल हो जाती है, अनजाने में कला का जन्म हो जाता है, किन्तु वह सदा अन्तर्मन में ही पैदा होती है। उसके पैदा होते ही 'अन्धता' सूर के रूप में आकारित हो जाती है तो 'दीनता' तुलसी बनकर उभरती है जिसका सान्निध्य एवं आलिंगन पाने के लिए युग-युग से पीड़ित-व्यथित मानवता मचल उठती है। अन्तर्मन में 'जनमी' उक्त कला का परिणाम सिर्फ इतना ही नहीं होता अपितु 'प्राचेतस' तो वाल्मीकि बन जाता है और उसकी क्रूरता करुणा की स्रोतस्विनी बन अपनी मृदुल एवं सरस धार की तीव्रता में सम्पूर्ण वसुन्धरा को ही बाँध लेती है। उसका 'स्व' इतना विराट हो जाता है कि असीमता उसके पाँव चूमने लगती है। बहरहाल, इसी समय कलाकार को अपनी 'पूर्णता' का किंचित भान भी होता है, क्योंकि कलाकार भी मनुष्य ही होता है और मनुष्य मूलतः अपूर्ण होता है। 'पूर्णात्पूर्णमिदं' की आकांक्षा इसलिए उसकी प्रकृति बन जाती है। यही आकांक्षा उसे साधक बनाती है। कला उसकी पूर्णता को प्राप्ति का एक अमोघ साधन है। वह सत्य को आकारित करने का आधार भी है। वास्तव में, सत्य ही ईश्वर का स्वरूप है, वही परात्पर है और परात्पर ही कला का और कलाकार का साध्य है और उसकी पूर्णता की प्राप्ति के प्रयत्न का प्रमाण भी वही है और परिणाम भी वही है। कलाकार का चिन्तन, उसकी धारणा या संकल्प साध्य नहीं (क्योंकि कुछ लोग ऐसा समझते हैं), सिर्फ साधन है। इसीलिए कला साध्य तक पहुँचने का कभी माध्यम भी प्रतीत होती है और कभी स्वयं साध्य की भी प्रतीति कराती है। सच तो यह है कि उक्त प्रतीति अनुभूति की तीव्रता से होती है।

आदिम अवस्था में शिशु-से नादान मानव को अनुभूति की तीव्रता से ही नव्यबोध हुआ। पूरी दुनिया उसके सामने थी। उसने दुनिया में और अपने में अन्तर समझा। वह अकेला था, दुनिया व्यापक थी। उसने अपने को सीमित और क्षुद्र अनुभव किया, क्योंकि ओर-छोर-हीन विस्तारित दुनिया वास्तव में अद्‌भुत थी। पवन की प्रबलता, पानी की अगाधता और धूप की प्रचण्डता असह्य थी।

चारों ओर जटिल झाड़ियां, दुर्गम कान्तार और असहाय मानव, अकेला मानव! फिर क्या था, उसके भीतर जिजीविषा जगी। 'जीना है' का भाव तीव्र हुआ। यह एक सर्वथा नवीन अनुभूति थी। इसी नवीन अनुभूति के कारण, नयी इच्छा के कारण जटिल विश्व के प्रति, द्वन्द्व की, द्वित्व और विग्रह की वृत्ति ने उसके अन्तर्मन में जन्म लिया। यद्यपि उसके मन में उत्साह था, फिर भी पीड़ा आकारित हुई। फिर तरलित हुई और आँसू बन ढुलक गयी। जटिल जंगल में कविता का जन्म हो गया, कला भी 'जनम' गयी। यही कला और कविता के उद्‌भव का मूल रहस्य है जिसका बोध बहुत बाद में हुआ। निश्चय ही आत्म संघर्ष की जटिलता में कविता की धारा फूटी थी। वह राजमहल की सुख-समृद्धि में नहीं, दुर्गम कान्तार की नीरव मनोहरता में जन्मी थी। इसलिए वह सायासित नहीं, स्वाभाविक थी।

भिखारी ठाकुर की कविता भी अनादिकाल की विषमता एवं जटिलता के अरण्य में जन्मी तथा सतत प्रवाहित उस कविता की शाश्वत धारा मनुष्य और मनुष्यता के हित में सदा ही प्रवाहित होती रहेगी। तीस वर्षों तक दासत्व की जिन्दगी गुजारने वाले 'नाई' भिखारी की कविता हजामत बनाते समय किसी जमींदार के गाल पर ताल ठोंककर अनजाने में पैदा हुई थी। बहरहाल, उसका सद्यः परिणाम तो यह हुआ कि भिखारी की खूब दैहिक समीक्षा हुई। जान बचाकर उन्हें भागना पड़ा। कभी कलकत्ता तो कभी खड्गपुर। कभी यहाँ तो कभी वहाँ। किन्तु यह प्रवास उनके ज्ञानवर्द्धन में सहायक सिद्ध हुआ। अनुभूति में तीव्रता आई। कल्पना ने अंगड़ाई ली। निजी सोच को सहारा मिल गया। फिर क्या था! साहित्य और संगीत की वह धारा प्रवाहित हुई जिसमें पूर्वांचल डूब गया, बिहार, बंगाल, पूर्वी उत्तर प्रदेश की जनता और उसकी भावना के तथा निजी जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों के रंगीन चितेरे बन गये भिखारी ठाकुर। मेदिनीपुर की रामलीला और जगन्नाथपुरी की रथयात्रा के प्रसंग में निकाले गये स्वांग ने उनकी चेतना में सोई अनादिकालीन भारतीय संस्कृति और लौकिक परम्परा को जगा दिया। तीस वर्ष की चढ़ती जवानी और अभावों के अथाह सागर में डूबते-तिरते पूर्वी बोली और लोकभाषा के सार्थक गायक ने 'बिदेसिया' रचकर अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत की। निरक्षर होने के बावजूद उन्हें सरस्वती की कृपा प्राप्त थी। जो कुछ जुबान से निकल गया, वह सरस संगीत बन गया।

वस्तुतः किसी भी अमर कलाकार की बात जब भी चलती है तो विभिन्न दृष्टियों से उसे महान सिद्ध करने का प्रयत्न उसके चहेते करते हैं, किन्तु निश्चय

ही किसी कवि को महान सिद्ध करने के लिए उसके साहित्य का महत् आकार ही पर्याप्त नहीं होता और न तो कल्पना की ऊँची उड़ान ही। शास्त्रीय दृष्टि से भी और जितनी बातों की अपेक्षा किसी रचनाकार को महान सिद्ध करने के लिये होती है उन बातों या शर्तों की आवश्यकता हो सकती है, किन्तु मेरी दृष्टि में रचनाकार को महान सिद्ध करने के लिए उसकी जन-प्रियता पहली शर्त होनी चाहिए। वास्तव में, जिस कवि की रचनाएँ जनता की जुबान से चिपकी रहती हैं, निश्चय ही वह जनता का कवि होता है और यही उसकी जन-प्रियता का प्रमाण भी है। उदाहरणार्थ अपढ़ गँवार हो या वाक्पटु परम सिद्ध विद्वान, सभी समान रूप से अपनी-अपनी पहुँच तक जिस प्रकार तुलसी और कबीर की रचनाओं में रस प्राप्त करते हैं, वैसा किसी अन्य कवि की रचना में नहीं, और यही जन-प्रियता तुलसी और कबीर को महान बनाती है। निश्चय ही तुलसी और कबीर के सामने भिखारी ठाकुर के साहित्य की सीमा संकुचित है, तथापि सीमित क्षेत्र में उनकी जनप्रियता का कोई मिसाल नहीं। उनकी काव्य पंक्तियाँ जनता की जुबान से ही नहीं चिपकी हैं, प्रत्युत उनके श्वाँस-श्वाँस में रची-बसी हैं जबकि उनके प्रकाशित-अप्रकाशित साहित्य का सम्यक् और व्यापक प्रचार प्रसार भी नहीं है। निश्चय ही वे जनता के कवि थे। जनता की पीड़ा ही उनकी निज की थाती थी। इसीलिए उनके शब्द-शब्द से जन पीड़ा को ही आकार मिला– 'उनका शब्द का घुघुरुन में बोलल गाँव के पीड़ा, यद्यपि स्वयं उन्होंने अपना परिचय एक भिखारी के रूप में दिया है। 'नाम भिखारी, काम भिखारी, रूप भिखारी मोर। हाट पलानि मकान भिखारी, चहुँ दिसि भइल सोर।' तथापि वे गरीबों के दिल और दिमाग पर शासन करने वाले बेताज बादशाह थे। भोजपुरी आन्दोलन के इतिहास पुरुष थे भिखारी ठाकुर। कविता उनके आन्दोलन की एकान्त सहचरी थी। उसी ने उन्हें लोक कलाकार के रूप में स्थापित भी किया।

भिखारी ठाकुर लोक रुचि, लोकभाषा और लोकजीवन के प्रति समर्पित कलाकार थे। इनका उत्थान ही उनके काव्य का ध्येय था, किन्तु जन जागृति के बिना यह संभव नहीं था और जनजागरण के लिए कोई बहाना चाहिए था, किसी सशक्त माध्यम की आवश्यकता थी। उन्होंने कविता को चुना। वास्तव में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम कविता होती भी है। किन्तु उनकी कविता तो तेज धार की दृश्यात्मक कविता थी। जहाँ लयमयता उसकी निजी प्रकृति थी, वहीं दृश्यात्मकता उसके समर्थ होने का सबल प्रमाण थी। एक तो वे जन्मजात कवि थे। बोलते थे तो कविता निकल आती थी, वैसे ही जैसे कठोर चट्टान की छाती

फोड़कर जीवन दायिनी नदी की धार निकल आती है। यही कारण है कि उन्हें अपने भावों एवं विचारों को जन-जन तक पहुँचाने में बेशुमार सफलता मिली। प्रगतिशीलता उनमें कूट-कूटकर भरी थी। विकास अथवा सामाजिक परिवर्तन में वे परम्परा को बाधक नहीं मानते थे। उन्हें सिर्फ ढोंग, ढकोसला और विकृत सामाजिक रूढ़ियों से बेहद चिढ़ थी। उनका सौन्दर्य बोध भी प्रगतिशील एवं लोकहितकारी था। लोक मंगल के वे सच्चे आराधक और प्रचारक थे। उनका स्वभाव एवं व्यक्तित्व सब कुछ मर्यादित था, क्योंकि सामाजिक मर्यादा में उनका अटूट विश्वास था और आजीवन उन्होंने उसकी रक्षा की थी।

दो दर्जन से अधिक अमर कृतियों के रचनाकार होने के बावजूद उनके मन में कहीं अहंकार नहीं था। अत्यन्त सहज जीवन जीने में उनका विश्वास था। वे निश्छल हृदय थे। उदारता और करुणा उनके रोम-रोम से टपकती थी। इसीलिए उनका काव्य इतना सरस और मनोहारी बन गया। कृष्ण की बांसुरी की ध्वनि सुनकर जैसे आबाल-वृद्ध-वनिता, गोपी-ग्वाल अपनी-अपनी सुधि बिसारकर चल देते थे, वैसे ही भिखारी ठाकुर की नृत्य मंडली और रंगमंचीय कार्यक्रम की सूचना मिलते ही नर-नारी निश्चित स्थल की ओर खिंचते चले जाते। जन-सैलाब उमड़ पड़ता था, किन्तु पूर्ण अनुशासित और एकदम शान्त। यह सारा कमाल उनके सरस गीतों का था। इनके गीत दृश्य भी थे और श्रव्य भी। इसीलिए उनकी सार्थकता दोहरी हो जाती थी। अभिनेयता, स्वर माधुरी तथा संगीत के अन्य संदर्भों की सम्पन्नता के साथ भावों की मार्मिकता उनके काव्य को अनमोल बना देती थी। उनके गीत सायासित नहीं थे। वे मर्म को भेदकर तथा हृदय की तरलता में घुलकर अनुभूति के पहाड़ की चोटी से छलके गीत थे। सहजता उन गीतों की निजता थी तो भाव-गांभीर्य उन गीतों की पहचान की सीमा। सरसता उनके गीतों की प्रकृति थी, क्योंकि लोक-पीड़ा जनित आँसू की सीमा और सरसता उनके गीतों की प्रकृति थी, क्योंकि वे लोक-पीड़ा जनित आँसू के साथ प्रवाहित गीत थे— 'तीस बरिस के भइल उमिरिया, तब लागल जिउ तरसे, कहीं से गीत, कवित्त कहीं से लागल अपने बरसे।' यह अद्‌भुत 'बरसात' थी बिना बादलों की, किन्तु मूसलाधार। उसकी तीव्र धार की सरसता में प्रवाहित हुए बिना कोई विज्ञ जन कैसे रह सकता था। यह भी सच है कि उनके चहेतों की भीड़ में काव्य मर्मज्ञ शास्त्रकार कम थे, भारी भीड़ साधारण निरक्षर जनता की ही थी, किन्तु काव्य की सरस वृष्टि में भींगे बिना कोई न रह सका। तन-मन से सराबोर हो जाते थे श्रोता। यही उनकी कविता का आश्चर्यकर रहस्य था। स्वयं उनकी दृष्टि में

उनका काव्य-सृजन एक चमत्कार था—दैवी चमत्कार। यह उनकी मातृभाषा का चमत्कार था, परन्तु यथार्थ की भावभूमि पर हृदय-सरिता के प्रवाह से अभिसिंचित भिखारी काव्य का अंकुरण सामाजिक विसंगतियों में विकसित हुआ था। इसीलिए लाख-लाख सरसता और सहजता के बावजूद उनके गीत तेज धार के हैं, उनमें खीज भी है और परिवर्तन का तीखा तेवर भी।

लोक मंगल की भावना से सम्पन्न परम उदार अध्यात्म-संस्कृति के प्रबल समर्थक थे भिखारी ठाकुर। जिसके प्रचार-प्रसार हेतु लोक भाषा में प्रचलित जन श्रुतियों, लोकोक्तियों एवं मुहावरों तथा समकालीन अनुभूतियों को उन्होंने अपना आधार बनाया। इसीलिये उन्होंने भौतिकता जनित भोग-विलास की चकाचौंध में फँसे जनमानस को संवेदित कर सत्कर्म की ओर प्रेरित करने का आजीवन प्रयास किया और यही उनके काव्य का प्रतिपाद्य भी बना। यही कारण है कि संत एवं भक्त कवियों-सी उनके काव्य की मार्मिकता सभी को बाँध लेती है, क्योंकि उक्त कवियों की भाँति ही लड़खड़ाती सामाजिक चेतना को भिखारी-काव्य का सशक्त संबल मिला। यह कहने में मुझे जरा भी संकोच नहीं हो रहा है कि सूर की सरस रसनवता, रसखान का समर्पण, रहीम की नैतिकता, कबीर का व्याकुल आक्रोश और मीरा की तड़प तथा तुलसी की व्यापक भावुकता का एक साथ दर्शन भिखारी के जनकाव्य में हो जाता है।

भिखारी प्रयोग धर्मी रचनाकार थे। कविता, कला, लोकनाट्य के विविध रूपों के प्रवर्तक होने के कारण उनका व्यक्तित्व बहुआयामी हो गया था। लोकभाषा के किसी भी कवि के समानान्तर उनका काव्य रखा जा सकता है। संत कवियों के सारत्व के वे हिमायती थे तो भक्ति कवियों की सहजता और शालीनता के समर्थक। उन्होंने स्वयं घोषणा की थी कि 'गीत वही है जिसमें मालिक का नाम हो और तमाशा तभी सार्थक है जिसमें धर्म की चर्चा हो।' मूलतः यही उनके काव्य का ध्येय था। कबीर की भाँति उनका भी कर्म में विश्वास था। वास्तव में संत कवियों की यही प्रकृति थी। कबीर कपड़ा बुनते थे, रैदास जूता बनाते थे। भिखारी भी नाई थे और संत कवियों की राह के राही भी। उन्होंने कला को अपनी वृत्ति का आधार बनाया, न केवल अपने लिये, प्रत्युत उन सभी के लिये जो उनपर आश्रित थे या उनकी कला से सम्बद्ध। वे स्वभावतः सन्त और संस्कारी भक्त थे। उन्हें कविता सिद्ध थी। सच तो यह है कि कबीर को अपनी भाषा पर अधिकार था और भिखारी को अपनी कविता पर। भाषा कबीर के

सामने लाचार थी और कविता भिखारी के सामने। अपनी-अपनी साधना में दोनों सिद्ध थे और दोनो की साधना सार्थक थी।

भिखारी का सम्पूर्ण रचना संसार, अपनी लघुता में भी विराट भावना से ओत-प्रोत है। भिखारी की 'विदेसिया,' 'भाई-विरोध', 'कलियुग-प्रेम' , 'गबर घिचोर' आदि एकादश नाट्य कृतियाँ एवं 'राम विवाह', 'भिखारी-संकीर्तन', 'रामनाम माला', 'नौ अवतार' सहित अन्य सत्रह फुटकर रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें विषय-वैविध्य के दर्शन होते हैं, किन्तु सभी के केन्द्र में करुणा की धारा प्रवाहित है जिनमें पूर्वांचल की जनता की गरीबी एवं निरीहता के साथ सामाजिक विसंगतियों एवं रूढ़ियों को खूबी उकेरा गया है। इनमें जहाँ नवीन सामाजिक व्यवस्था की आकांक्षा व्यक्त की गयी है, वहीं प्रौढ़ राष्ट्रीयता एवं नैतिकता के संवर्द्धन की पुरजोर वकालत भी की गयी है।

उक्त सम्पूर्ण कृतियों में 'विदेसिया' लोकरुचि एवं लोकजीवन का दस्तावेज है। भोजपुरी लोकभाषा में रची-बसी ग्रामीण जनता के सुख-दुख की वह अमर कहानी है। प्राकृतिक प्रकोप की बार-बार की मार से लड़खड़ाती गरीब-निरीह एवं परमदुःखी जनता के सुख-दुखात्मक स्पन्दन को उकेरती उक्त रचना पाठक एवं श्रोता के रोम-रोम में झनझनाहट पैदा करने में समर्थ है। भिखारी ठाकुर ने ऐसी समर्थ एवं प्रभावकारी रचना को न केवल आकारित किया, बल्कि रंगमंच पर सटीक एवं सफलतापूर्वक अभिनय करके भोजपुरी भाषा की शक्ति एवं सार्थकता को भी रेखांकित किया। उनकी अन्य नाट्य कृतियाँ भी नौटंकी तर्ज की-सी हैं। गीत-संगीत से भरपूर, मार्मिक भावनाओं से 'लदफद' उक्त कृतियाँ भाव प्रेषणीयता में नायाब हैं। भिखारी ठाकुर 'विदेसिया' जैसी नूतन शैली के न केवल जन्मदाता थे, बल्कि प्रखर प्रयोगधर्मा, किन्तु भावुक रचनाकार भी थे। यही कारण है कि उनके दर्शकों की आँखों में आँसू और होठों पर मुस्कान का बेमेल संगम एक साथ दीखता था। भोजपुरी नाटक के प्रवर्तक होने का गौरव भी भिखारी ठाकुर को ही प्राप्त था। उनकी रचनाओं की पौढ़ता से प्रभावित होकर ही राहुलजी ने उन्हें भोजपुरी का शेक्सपियर कहा था। प्रगतिशील सामाजिक दृष्टि के साथ ही उदारता उनकी जीवन शैली थी। देश और राष्ट्र के प्रति उनके मन में बेहद सम्मान था। राष्ट्रीयता तो उनमें कूट-कूट कर भरी थी। यही कारण है कि उन्होंने चीनी आक्रमण के समय टिकट लगाकर नाटक खेला और राष्ट्रीय कोष में प्राप्त सम्पूर्ण धनराशि को जमाकर दिया था। उन्होंने जो भी कमाया उसका बहुत बड़ा अंश गरीबों में लुटाया। फकीरी उन्हें विरासत में मिली थी। यह कारण है कि पूर्वांचल की जनता

उनपर बेशुमार प्रेम लुटाती थी। अन्ततः वे जनप्रिय भावुक कलाकार के रूप में ही समादृत नहीं थे, बल्कि अपने चहेतों एवं दर्शकों के हृदय-सम्राट भी बन बैठे थे।

मूलतः भिखारी के साहित्य का काम्य है जनहित। समाज के भीतर फैली विकृत सामाजिक व्यवस्था और शोषण-उत्पीड़न को उन्होंने अपनी नंगी आँखों से देखा था। नापित होने के नाते समाज का कोई भी अन्तरंग प्रकोष्ठ उनकी पहुँच से बाहर नहीं था। अतः 'समाज में जो कुछ भी देखा और जो कुछ पाया उसे अपनी प्रतिभा का प्रसाद एवं वर्ण, रूप एवं गंध प्रदान कर उसे अत्यन्त सरस एवं मधुर बना दिया। उनकी और उनकी रचना को रमणीयता का यही रहस्य है, उन्होंने सामाजिक विकृतियों को रंगमंच पर प्रदर्शित करके समाज-सुधार का सरल एवं सर्वथा नवीन फार्मूला ढूँढ़ निकाला था जिसके कारण निरक्षर जनता कुरीतियों एवं शोषण से मुक्त होने के लिए सहजतापूर्वक प्रेरित हो जाया करती थी।

निश्चय ही तत्कालीन समाज में नारी की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। अतः अश्रु विगलित नारी जीवन का उन्होंने यथार्थ चित्रण किया। 'बेटी वियोग', 'पियवा निसइल' 'गंगा स्नान' आदि रचनाएं नारी के करुणा-विगलित जीवन' का आईना हैं। उन्होंने नारी के विषम दुःखद जीवन का भी बेबाक चित्रण किया। उसके शोषित एवं नारकीय जीवन को भी बदस्तूर दर्शाया, किन्तु कहीं भी उसे नीचा नहीं दिखाया। उनके हृदय में नारी का वह स्वरूप स्थापित था जो प्राचीन ऋषियों और मनीषियों ने स्थापित किया था। देवतुल्य थी नारी। समाज में सर्वोच्च स्थान की अधिकारिणी। नारी चिन्ता का उनका ध्येय भी यही था कि नारी को समाज में पूर्व प्राप्त स्थान फिर से मिलना चाहिए। उनकी दृष्टि में सामंती मानसिकता एवं पूँजीवादी व्यवस्था ने नारी को विकृति प्रदान की है। वह उपभोग की वस्तु मात्र बनकर रह गयी है, किन्तु वह सिर्फ भोग्या नहीं हो सकती। वह तो माँ है, भगिनी है, जीवन सहचरी है। अतः पुरुष के समान स्तर एवं अधिकार की अधिकारिणी है। वह तो परिवार की अधिष्ठात्री होती है। इसलिए सर्वथा आदरणीय है। 'गबर घिचोर' के माध्यम से उन्होंने नारी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने का संदेश ही नहीं दिया, प्रत्युत उसके अबला रूप को निरस्त करके उसे सबला के रूप में स्थापित किया। उन्होंने बाल विवाह एवं बेमेल विवाह जनित नारी की पीड़ा को अपनी नृत्य कला के माध्यम से आकारित कर पुरुष समाज को झकझोर दिया था जिसका सद्यः परिणाम सामने भी आया। बाल एवं बेमेल विवाह में कमी

आ गयी। सामाजिक मानसिकता ने करवट ली और पर्दे में सिकुड़ी रहने वाली नारी को किंचित अपने अस्तित्व का बोध भी हुआ। सामाजिक दृष्टि से एक रचनाकार की यह बहुत बड़ी सफलता मानी जानी चाहिए।

निश्चय ही भिखारी अद्भुत कलाकार थे। अपने चहेतों के वे हृदय सम्राट थे। उनकी प्रयोगधर्मिता ने अनूठी शैली को जन्म दिया था। वे अपनी कालजयी अमर कृतियों के लिए भोजपुरी साहित्य में सदा ही प्रतिष्ठित और समादृत रहेंगे, किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि ऐसे अमर कलाकार की रचनाओं का अभी तक न तो व्यापक स्तर पर प्रकाशन ही हुआ है और न तो सम्यक मूल्यांकन ही। गिने-चुने मर्मज्ञों के सिवाय 'बड़े लोगो' का तो ध्यान भी उधर नहीं गया है। जिन दो-चार मर्मज्ञों ने भिखारी ठाकुर को पहचानने का प्रयत्न किया है उनमें डॉ० भगवती प्रसाद द्विवेदी शीर्षस्थ हैं। स्वयं वे प्रतिभा सम्पन्न बहुआयामी रचनाकार हैं। क्या हिन्दी और क्या भोजपुरी, दोनों में समान गति से बहुत गहराई तक उनकी पहुँच है। वे एक समर्थ आलोचक भी हैं। 'भिखारी ठाकुर : भोजपुरी के भारतेन्दु' जैसी पौढ़ रचना ही इसका प्रमाण है। प्रस्तुत कृति उनकी मौलिक कृति है जिसके माध्यम से भिखारी को समझने में और उनकी कृतियों के अन्तस में प्रवेश का मार्ग सुगम होगा। निश्चय ही डॉ० द्विवेदी का यह प्रयास स्तुत्य है। पाठकों की भी उनसे अनेक अपेक्षाएँ हैं। इस अनूठी कृति के लिए उन्हें बधाई!

☐ डॉ. रघुवंशमणि पाठक

रीडर, हिन्दी विभाग
सतीश चन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बलिया (उ० प्र०) २७७००१

भिखारी ठाकुर : भोजपुरी के भारतेन्दु

एक सम्पूर्ण मनुष्य की निश्छल जीवन-यात्रा

वर्ष १९९२ में जब बिहार की राजधानी पटना के यारपुर रेलवे क्रॉसिंग पर निर्मित पुल का नामकरण 'पद्मश्री भिखारी ठाकुर सेतु' किया गया और पुल के पश्चिमी छोर के निकट भिखारी ठाकुर की आदमकद प्रतिमा स्थापित करने की सरकारी घोषणा की गयी तो एकाएक भिखारी ठाकुर का नाम सबकी जुबान पर आ गया और वह महीनों विभिन्न संचार माध्यमों में चर्चा के केन्द्र में रहे। एक तरफ जनमानस में खुशी की लहर दौड़ गयी थी, वहीं कुछेक ने नामकरण के औचित्य पर ईर्ष्यावश प्रश्नचिन्ह लगाया और मीन-मेख निकालने की गरज से यह भी कहा कि भिखारी को 'पद्मश्री' की उपाधि मिली ही नहीं थी। सच तो यह है कि बहुत-सी प्रतिभाएं सम्मान पाकर सम्मानित होती हैं, पर कुछेक विरल प्रतिभाओं को सम्मानित करने वाली संस्था व उपाधि ही सम्मानित-गौरवान्वित होती है। भिखारी ठाकुर का ऐसा ही विरल व्यक्तित्व था। हालांकि अंग्रेजों ने उन्हें 'राय बहादुर'[1] का खिताब १९४४ में दिया था और बिहार सरकार ने राज्यपाल के हाथों ताम्रपत्र प्रदानकर सम्मानित किया था, पर उनका वास्तविक सम्मान था— जन-जन में व्याप्त उनकी प्रचण्ड लोकप्रियता। गोस्वामी तुलसीदास व कबीर के बाद यदि किसी जनकवि-कलाकार ने लोकप्रियता में कीर्तिमान स्थापित किया तो वह थे भिखारी ठाकुर। स्वयं भिखारी ने स्कूली शिक्षा तक नहीं ली थी, पर उनके व्यक्तित्व-कृतित्व पर शोध करने वाले अनेक लोगों ने पी-एच. डी. की उपाधि हासिल कर ली।

निरक्षर होने के बावजूद भिखारी ठाकुर एक तरफ जहां लोकनाटककार, जनकवि-संतकवि, गायक व नर्तक के रूप में सुप्रसिद्ध थे, वहीं दूसरी तरफ एक कुशल नाट्य निर्देशक और व्यवस्थापक के रूप में भी बहुचर्चित थे। अभिनय कला में तो उन्हें जैसे मां भारती का वरदान ही प्राप्त था। यही वजह थी कि उनकी नृत्य-मंडली जहां भी जाती थी, दर्शकों की इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी हो जाती थी कि प्रशासन के लिए पुलिस की तैनाती अनिवार्यता बन जाती थी। सच तो यह है कि भिखारी भोजपुरी के एक ऐसे प्रकाशपुंज हैं, जिन्हें अलग कर देने—

---

१. कुछ विद्वानों का मानना है कि भिखारी को 'राय बहादुर' के बजाय 'राय साहब' का खिताब मिला था, पर अविनाश चन्द्र विद्यार्थी के अनुसार, उक्त उपाधि उन्हें मिली नहीं थी, सिर्फ घोषणा भर हुई थी।

पर भोजपुरी की अस्मिता ही खतरे में पड़ सकती है या यों कहें कि सूर्य-सी भोजपुरी को ग्रहण लग सकता है।

मगर प्रबुद्ध वर्ग से भिखारी ठाकुर को 'नचनिया' की उपाधि और उपेक्षा ही जीवनभर मिलती रही थी। भिखारी को यदि किसी ने सही मायने में सम्मान दिया था तो वह थे महापंडित राहुल सांकृत्यायन। उन्होंने भिखारी ठाकुर को 'भोजपुरी का शेक्सपियर' और 'अनगढ़ हीरा' कहा था। दरअसल शेक्सपियर व भिखारी के सृजन में काफी हद तक समानताएं हैं। शेक्सपियर के नाटकों में भी गीतों की प्रधानता है और भिखारी के नाटकों में भी। आम आदमी के दुःख-दर्द, हास्य की थिरकन और व्यंग्य की पैनी मार दोनों की ही सर्जनात्मकता की विशेषताएं हैं। तभी तो संवत २००५ में महापंडित राहुलजी ने 'भोजपुरी' में लिखा था—"हमनी के बोली में केतना जोर हवे, केतना तेज बा, ई अपने सब भिखारी ठाकुर के नाटक में देखींले। लोग के काहे नीमन लागेला भिखारी ठाकुर के नाटक? काहे दस-दस, पनरह-पनरह हजार के भीड़ होला ई नाटक देखे के खातिर ? मालूम होता कि एही नाटक में पब्लिक के रस आवेला। जवन चीज में रस आवे, उहे कविताई। केहू के लमहर नाक होखे आ ऊ खाली दोसे सूंघत फिरे त ओकरा खातिर का कहल जाय! हम ई न कहतानी जे भिखारी ठाकुर के नाटकन में दोस नइखे। दोस बा त ओकर कारन भिखारी ठाकुर नइखन, ओकर कारन हवे पढ़ुवा लोग।... भिखारी ठाकुर हमनी के एगो अनगढ़ हीरा हवे। उनकरा में कुल्हि गुन बा..."

[अर्थात्, हमारी बोली में कितना जोर है, कितना तेज है, यह आप सभी भिखारी ठाकुर के नाटकों में देखते हैं। लोगों को क्यों अच्छे लगते हैं भिखारी ठाकुर के नाटक? क्यों दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह हजार की भीड़ होती है इन नाटकों को देखने की खातिर? मालूम होता है, इन्हीं नाटकों में आम जनता को रसानुभूति होती है। जिन चीजों में रस मिले, वही काव्य। (यदि) किसी की लम्बी नाक हो और वह सिर्फ दोष ही सूँघती फिरे तो उसके लिए क्या कहा जाय! मैं यह नहीं कहता कि भिखारी ठाकुर के नाटकों में दोष है ही नहीं। दोष है तो उसकी वजह भिखारी ठाकुर नहीं हैं, वजह हैं प्रबुद्ध लोग..भिखारी ठाकुर (तो) हमारे एक अनगढ़ हीरा हैं। उनमें सभी गुण हैं..."]

तभी तो भिखारी साहित्य के समालोचक महेश्वराचार्य का कथन है—"निर्विवाद है कि उत्तर भारत में भिखारी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। मध्य

भारत, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल तथा असम तक विरले कोई होगा जो भिखारी को न जानता हो। यह सही है कि तुलसी के मानस ने जनमानस पर पूर्णतः अधिकार प्राप्त किया है; लेकिन आज यदि उत्तरी भारत के अधिकांश लोगों के हृदय पर हाथ रखकर पूछा जाय कि ऐसा कौन-सा जनकवि अथवा लोक-कलाकार था, जो एक साथ ही हंसाने-रुलाने की क्षमता रखता था तो उसका एकमात्र यही सही और सटीक उत्तर हो सकता है कि नृत्य-संगीत तथा काव्य-कला विशारद—भक्त भिखारी।''[9]

बिहार के सारण जिले में छपरा शहर से लगभग दस किलोमीटर पूर्व में 'चिरांध' (चिरान) नामक स्थान के पास 'भिखारी ठाकुर पथ' का सरकारी बोर्ड लगा है। दक्षिण दिशा में इस कच्ची सड़क पर थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही तिवारीघाट (पूर्व का नाम 'वनरा घाट') से गंगानदी पार करनी पड़ती है। उस पार तकरीबन चार किलोमीटर की दियारे क्षेत्र की पदयात्रा करने के बाद कुतुबपुर गांव के दर्शन होते हैं। आज भी अपनी दीन-हीन दशा पर आंसू बहाता खड़ा है कुतुबपुर गांव, जो कभी भोजपुर (शाहाबाद) जिले में था, पर अब गंगा की कटान को झेलता सारण (छपरा) जिले में आ गया है। इसी गांव के पूर्वी छोर पर स्थित है भिखारी ठाकुर का पुश्तैनी, कच्चा, पुराना, खपरैल का मकान। बगैर झुके बरामदे में घुसा भी नहीं जा सकता। इसी गांव में १३ अप्रैल, १९८६ को उनकी प्रतिमा की आधारशिला 'लोककलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम' के तत्वावधान में रखी गयी थी।

कुतुबपुर के अपने मिट्टी के मकान में ही मिट्टी से गहरे जुड़े कवि-नाटककार भिखारी ठाकुर पौष मास शुक्ल पंचमी संवत् १९४४ तदनुसार १८ दिसम्बर, १८८७ (सोमवार) को दोपहर बारह बजे शिवकली देवी के गर्भ से दलसिंगार ठाकुर के नाई परिवार में पैदा हुए थे। ठाकुर जी ने अपने जन्म के बाबत खुद लिखा है :

बारह सौ पंचानवे जहिया। सुदी पूस पंचमी रहे तहिया।।
रोज सोमार ठीक दुपहरिया। जनम भइल ओही घरिया।।

जन्म स्थान मूलतः आरा (भोजपुर) जिले में ही था, जो उनकी ३९ वर्ष की आयु में दहकर सारण जिले में आ गया था। ननिहाल, ससुराल, फुफहर, पुरोहितो—सारे सम्बन्ध तो आरा जनपद में ही थे। भिखारी के ही शब्दों में:

● फसली संवत

आरा जिला ममहर, ससुराल, फुफहर, आरा जिला पुरोहित-गुरु आरा परिवार है,
आरा जिला राजा, दीवान छड़ीदार आरा, डाकघर बबुरा बरहगांवा में बधार है,
थाना बड़हरा आरा-छपरा के मध्य जो परत करीब चकिया मटुकपुर बजार है,
दहकर कुतुबपुर गांव बसल दियारा में, तबहीं से भिखारी कहत छपरा प्रचार है।

सिर्फ गांव कुतुबपुर के विषय में ही नहीं, बल्कि गांव की चौहद्दी, उसका भूगोल और आसपास के गांवों की स्थिति व वहां से उनकी दूरी की विस्तृत जानकारी भी उन्होंने यहाँ स्वयं ही दी है।

बबुरा, ढोकरिया, घुसरिया, कपूर, दियरा, इंगलिस सिरिसिया एक ग्राम ह,
चैनछपरा, सबलपुर, सूरतपुर, बन्धु छपरा, लगले बिसुनपुर, बिनगांव अस धाम ह,
दियरा में दयालचक, चकिया महाजी पछिम, कोटवा महाल तामें करत अराम ह,
हाल के मोकाम गंगा-सरजू के तट माहिं, कहत चौहद्दी भिखारी हजाम ह।
उत्तर खलपुरा महाराजगंज दरियागंज, डोरीगंज चिरानगढ़ मोरधज के जनावेला,
गंगा-सरजू पार में अरार पर गुलटेनगंज, मौजे मखदूमगंज डेढ़-दू कोस पावेला,
सेरपुर, धेघटा रउजा धारू टोला तेलपा तक, दियरा के बसिन्दा टोला नयका कहावेला,
कहत भिखारी दास खास शहर छपरा ह, सटले नेवाजी टोला पद होइ जावेला।

एक स्थान पर उन्होंने यह भी लिखा है कि पटना, आरा, छपरा और बलिया के चौमुहाने पर अवस्थित है उनका गांव कुतुबपुर। बचपन में वह कुछ दिनों तक गायों की चरवाही ही करते रहे। मां-बाप उनसे नाई का दाढ़ी-हजामत बनाने और चिट्ठी न्यौतने का पुश्तैनी धंधा ही करवाना चाहते थे। कुछ वर्षों तक वह इस पेशे से जुड़े भी रहे, पर साथ-ही-साथ तुकबंदी भी किया करते थे। कहते हैं कि एक रोज किसी बाबू साहब की दाढ़ी बनाने के बीच ही उन्होंने गुनगुनाना शुरू कर दिया और उनके गाल पर ही ताल ठोंकने लगे थे। फिर तो बाबू साहब आग-बबूला हो गए और उन्होंने भिखारी को काफी डांटा-फटकारा। उसी वक्त भिखारी ने इस धंधे को आखिरी प्रणाम कर जीवन में फिर कभी किसी की दाढ़ी-हजामत न बनाने की कसम खा ली।

छुरा छूटल, कैंची छूटल, छूटल नोहरनिया,
बाबू लोग के हजामत छूटल, नाच के करनिया।

बहुत दिनों तक भिखारी उद्विग्न-से रहा करते थे। क्या करें, क्या न करें? लुक-छिपकर वह नाच देखने चले जाते थे और नृत्य-मंडलियों में छोटी-मोटी भूमिकाएं भी अदा करने लगे थे। पर मां-बाप को यह कतई पसन्द न था। रोज ही वह मन्दिर में जाते और भगवान के सम्मुख माथा टेककर घंटों सोच के अथाह सागर में डूबते-उतराते कि क्या उनका जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो जाएगा।

कहते हैं, एक दिन ज्योंही वह मन्दिर से होकर बाहर निकले, एक महात्मा एकाएक प्रकट हुए और उनकी बड़ी-बड़ी आंखें और चौड़े मस्तक को देखकर कहा, "बेटा, घबराना मत! तुम्हें तुम्हारी राह अवश्य मिलेगी और तुम अपनी राह की एक अलग ही लीक बनाओगे। आयुष्मान् भव!" और ज्योंही उन्होंने हाथ जोड़कर कुछ कहना चाहा. साधु नदारद।

अपने मां-बाप की ज्येष्ठ सन्तान भिखारी ने नौ वर्ष की अवस्था में पढ़ाई शुरू की। एक वर्ष तक तो कुछ भी न सीख सके। साथ में छोटे भाई थे बहोर ठाकुर। बाद में गुरु भगवान से उन्होंने ककहरा सीखा और स्कूली शिक्षा अक्षर-ज्ञान तक ही सीमित रही। बस, किसी तरह टो-टाकर वह रामचरित मानस पढ़ लेते थे। वह कैथी लिपि में ही लिखते थे, जिसे दूसरों के लिए पढ़ पाना मुश्किल होता था। पर लेखन की मौलिक प्रतिभा तो उनमें जन्मजात थी। इस प्रकार—शिक्षा में वह कबीर की श्रेणी में आते हैं।

किशोरावस्था में ही उनका विवाह मतुना के साथ हो गया। फिर तो एक रोज गांव से भागकर वह खड्गपुर जा पहुँचे। मेदिनीपुर जिले की रामलीला और जगन्नाथपुरी की रथयात्रा देख उनके भीतर का सोया हुआ कलाकार पुनः जाग उठा और गांव लौटा तो कलात्मक प्रतिभा और धार्मिक भावनाओं से पूरी तरह लैस होकर। तीस वर्ष की उम्र में उन्होंने 'विदेसिया' की रचना की। फिर तो पीछे मुड़कर नहीं देखा। परिवार के विरोध के बावजूद नृत्यमंडली का गठनकर वह शोहरत की बुलंदियों को छूने लगे। जन-जन की जुबान पर बस एक ही नाम—भिखारी ठाकुर! डॉ० राम नाथ पाठक 'प्रणयी' के शब्दों मे—"बिहार के 'विदेसिया' नाटक के प्रवर्तक और लोक वीणा के तारों की झंकार के साथ स्वयं थिरकने वाले भिखारी ठाकुर अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लोक-कलाकार थे। भिखारी ने हिन्दी के अनेक संत कवियों की तरह कहीं शिक्षा नहीं पायी थी, किन्तु उन्हें दैवी प्रतिभा का अपूर्व सौभाग्य प्राप्त था। भिखारी के कंठ में अपूर्व माधुरी थी एवं स्वर में अद्भुत आकर्षण था। अभिनय-कला तो उन्हें वरदान रूप में प्राप्त

थी। यही कारण है कि उनका 'विदेसिया' रूपक उन्हें अल्पकाल में ही अक्षय यश दे गया।"[२]

भिखारी की लोकप्रियता इस कदर जंगल की आग-सी फैलती पसरती गयी कि उनके जन्म और जीवन से जुड़ी अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हो गयीं। फलतः उन्होंने इक्यावन वर्ष की उम्र में अपनी जिन्दगी की दास्तान कह सुनायी, जिसमें न कहीं कृत्रिमता थी, न ही बड़बोलापन। तभी तो कथाकार प्रो० ब्रजकिशोर से जब उनकी पहली मुलाकात हुई तो उन्होंने अपना नाम 'भिखरिया' बताते हुए परिचय दिया था। अध्यात्म के रंग में रंगे भक्त कवि भिखारी का आत्म परिचय और आत्म स्वीकारोक्ति निम्न पंक्तियों में देखें :

बरिस एकावन के हम भइली। तीरथ-बरत-सतसंग ना कइली।।
नौ बरिस के जब हम भइलीं। विद्या पढ़न पाठ घर गइलीं।।
बरिस एक तक जबदल मती। लिखे ना आइल रा म ग ती।।
मन में विद्या तनिक न भावत। कुछ दिन फिरलीं गाइ चरावत।।
गइया चारि रही घर माहीं। ओहि के नीत चरावन जाहीं।।
जब कुछ लगलीं माथ कमावे। तब लागल विद्या मन भावे।।
माथ कमाई, नेवतीं चिठी। विद्या में लागल रहे दीठी।।
बनिया गुरू नाम भगवाना। उहे ककहरा सात पढ़ाना।।
अल्प काल में लिखे लगलीं। तेकरा बाद खड़गपुर भगलीं।।
ललसा रहे जे बहरा जाईं। छुरा चलाके दाम कमाईं।।
गइलीं मेदिनीपुर के जीला। ओहिजे कुछ देखलीं रमलीला।।
ठाकुर दुअरा उहां से गइलीं। चनन तलाब समुद्र नहइलीं।।
दरसन करि डेरा प आईं। खोलि पोथी देखलीं चौपाई।।
फुलवारी के जगह बुझाइल। तुलसी-कृत में मन लपटाइल।।
घरे आके लगलीं रहे। गीत-कवित्त कतहूं केहू कहे।।
अरथ पूछि-पूछि के सीखीं। दोहा छन्द निज अछर लिखीं।।
साधू-पंडित के ढिग जाहीं। सुनि असलोक धोखीं मन माहीं।।
निजपुर में करिके रमलीला। नाच के तब बन्हलीं सिलसिला।।

तीस बरिस के उमिरि भइल। बेघलसि तब कलिकाल के मइल।।
नाच मंडली के धरि साथा। लेक्चर दीं कहिके रघुनाथा।।
बरजत रहलन बाप-मतारी। नाच में तू मति रहऽ भिखारी।।
चुपे भागि के नाच में जाईं। बात बना के दाम कमाईं।।
केहू सराहे, केहू दूसे। केहू कहे 'जमाव अबहूं से'।।
तनिक न आवे गावे-बजावे। काहे दो लागल लोग के भावे।।
एह पापी के कवन पून से, भइल चहूं दिसि नाम।
भजन भाव के हाल ना जनलीं, सबसे ठगलीं दाम।।

'गाने-बजाने तो आता था नहीं; पता नहीं क्यों, लोगों को अच्छा लगने लगा' की उक्ति में 'काहे दो' की गहराई में पैठे बगैर भिखारी ठाकुर की सर्जनात्मक प्रतिभा की विलक्षणता को नहीं समझा जा सकता।

वर्ष १६३८ से १६६२ के मध्य भिखारी ठाकुर की लगभग तीन दर्जन पुस्तिकाएं छपीं, जिन्हें फुटपाथों से खरीदकर लोग चाव से पढ़ा करते थे। अधिकांश पुस्तिकाएं दूधनाथ प्रेस, सकलियां (हावड़ा) और कचौड़ी गली (वाराणसी) से प्रकाशित हुई थीं। नाटकों व रूपकों में बहरा बहार (विदेसिया), कलियुग प्रेम (पियवा नसइल), गंगा स्नान, बेटी वियोग (बेटी बेचवा), भाई विरोध, पुत्र-बध, विधवा-विलाप, राधेश्याम बहार, ननद-भउजाई, गबर घिंचोर आदि मुख्य हैं। उनकी प्रसिद्धि को भुनाने के लिए कई जाली किताबें भी भिखारी ठाकुर के नाम से छपने-बिकने लगी थीं। इसी के मद्देनजर भिखारी को अपनी पुस्तकों की सूची भी प्रस्तुत करनी पड़ी।

'बिरहा बहार' प्रथम में गावा। तब **'कलियुग बहार'** सुधि आवा।।
'राधेश्याम बहार' हो गइलन। **'बेटी वियोग'** के चरचा भइलन।।
'कलियुग प्रेम' हो गइलन पाछे। **'गबर घिंचोरन'** लगलन आछे।।
'भाई विरोध' सोध के गवलीं। **'सिरी गंगा असनान'** बनवलीं।।
'पुत्र-वधू' पुस्तक परचार। तजबीज करिहऽ **'नाई बहार'**।।
'ननद-भौजी' कर संवादू। 'भांड़ के नकल' के बूझऽ सवादू।।
'बहरा बहार' के बरबस देखऽ। **'नवीन बिरहा'** नीके परेखऽ।।

भइल 'भिखारी नाटक' जारी। जे में नकल वा चारि प्रकारी।।
तब 'भिखारी शंका समाधाना'। साथे-साथ कर सुनहु बखाना।।
ओहि अवसर 'भिखारी हरिकीर्तन'। प्रेम लगाइ के करिहऽ निरतन।।
'जसोदा-सखी संवाद' सुहावन। तब 'भिखारी चौयुगी' पावन।।
छपल 'भिखारी जय हिन्द खबर'। 'बिकरा के नेग' सराध में जबर।।
तब 'भिखारी पुस्तिका सूची'। खरिदनहार के जइसन रुची।।
पुनि भिखारी चउबरन पदवी। 'विधवा विलाप' के मनिह अदवी।।
पढ़ऽ 'भिखारी भजन माला'। 'बुढ़साला' के छपल बा हाला।।
'राम नाम माला' पढ़ि लीजे। 'सीताराम से परिचय' कीजे।।
'नौ अवतार' कहाला नर के। एक 'आरती' दुनिया भर के।।
'मातु भक्ति', 'श्री नाम रतन', जगह-जगह पर गान।।
सब पुस्तिका समूह में, दीहल बा परमान।।

भोजपुरी के सिरमौर लोक कलाकार-भक्त भिखारी की समस्त रचनाओं के सांगोपांग विवेचन-विश्लेषण का पहला श्रेय समालोचक महेश्वराचार्य को जाता है, जिनकी पुस्तक 'भिखारी' लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम, कुतुबपुर के तत्वाधान में १३ जनवरी, १९७९ को प्रकाशित हुई। इसके पूर्व भी उन्होंने महेश्वर प्रसाद के नाम से वही पुस्तक 'जनकवि भिखारी ठाकुर' शीर्षक से कवि के जीवनकाल में ही लिखी थी, जिसका प्रकाशन भोजपुरी परिवार, पटना-३ ने १९६४ में किया था।

लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम ने भिखारी की समस्त कृतियों के प्रकाशन का बीड़ा उठाया और 'भिखारी ठाकुर ग्रंथावली' के दो खण्ड प्रकाशित किये। पहले खण्ड में 'विदेसिया', 'भाई विरोध', 'बेटी वियोग,' 'कलियुग प्रेम', और 'राधेश्याम बहार'—कुल पांच नाटक संकलित हैं। दूसरे खण्ड में 'गंगा स्नान', 'विधवा विलाप', 'पुत्र-वध', 'गबर घिंचोर', 'ननद-भउजाई'—पांच नाटकों को संकलित किया गया है। प्रथम खण्ड १९७९ में छपा था और द्वितीय खण्ड १९८६ में। तीसरे और अंतिम खण्ड में भिखारी ठाकुर के भजन, कीर्तन फुटकर काव्य और अन्य सामग्रियों के संकलन-संपादन की योजना धनाभाव में लम्बे अरसे से लम्बित है। ग्रंथावली के संग्रहकर्ता हैं भिखारी ठाकुर के इकलौते पुत्र लगभग

७६ वर्षीय शिलानाथ ठाकुर और भतीजे गौरीशंकर ठाकुर। संपादक मण्डल में अविनाश चन्द्र विद्यार्थी, डॉ० तैयब हुसैन 'पीड़ित', रामदास आर्य और जलेश्वर ठाकुर हैं।

ग्रंथावली में संकलित रचनाओं की मौलिकता और शुद्ध पाठ तैयार करने का क्या आधार रहा, इसे स्पष्ट करते हुए संपादक मंडल ने लिखा है—"ठाकुर जी की समस्त कृतियों का संकलन तथा उनका शुद्ध पाठ तैयार करना एक दुस्साध्य कार्य है, क्योंकि उनके जीवनकाल में ही उनके नाटक (जिसे वह स्वयं 'तमासा' कहते हैं) विभिन्न मण्डलियों द्वारा यद्किंचित परिवर्तन कर अपनाये जाते रहे और लोक-रुचि के अनुकूल प्रदर्शित होते रहे। संपादक मण्डल ने सभी उपलब्ध स्रोतों का अवलोकन करने के बाद ठाकुरजी के वंशधर—श्री शिलानाथ ठाकुर एवं श्री गौरीशंकर ठाकुर के पास उपलब्ध सामग्री को ही आधार बनाया और ठाकुर जी की परम्परा में श्री गौरीशंकर जी की मण्डली की मौखिक वार्ताओं को स्वीकार किया।"[३]

निस्संदेह इस श्रम-साध्य प्रामाणिक कार्य की जितनी भी सराहना की जाय, कम है। आश्रम के दो कमरे निर्मित हो चुके हैं। भिखारी लोकनृत्य परिषद नामक दो नृत्यमंडलियां भी चलती हैं। नृत्यमंडली को सुचारु रूप से चलाना भी आश्रम का उद्देश्य है, ताकि यह परम्परा चलती रहे।

भिखारी ठाकुर ने अपेक्षाकृत सस्ती के जमाने में लाखों रुपये कमाये, पर उनका मिट्टी का खपरैल मकान और परिवार की दीन-हीन दशा आज भी लोगों को हैरत में डाल देती है। उस वक्त वह ५००-६०० रुपये प्रति रात लेते थे, जबकि सोना मात्र १५० रुपये प्रति भरी (१० ग्राम) था। फिर भी उनका जीवन निर्धनता में ही कटा। दयालुता और सहृदयता ऐसी कि जिस जरूरतमंद को जैसी जरूरत होती थी, वह अपनी आवश्यकता को नजर अन्दाज करते हुए आर्थिक सहायता कर दिया करते थे।

७६ साल के वयोवृद्ध शिलानाथ जी भिखारी ठाकुर के एकमात्र पुत्र हैं जो सहजता, दीनता और अभावग्रस्ता की प्रतिमूर्ति लगते हैं। परिचय कराते हुए कह उठते हैं—"मेरे चाचाजी (बहोर ठाकुर) के दो पुत्र हैं—गौरीशंकर ठाकुर और रघुवर ठाकुर। मेरे तीन पुत्रों में से सबसे छोटे दिनकर का सन् १६८५ में असामयिक निधन हो गया। शेष दो पुत्र राजेन्द्र ठाकुर और हीरालाल ठाकुर सरकारी सेवा में हैं।"

अपने पिता की रचना-प्रक्रिया की बाबत शिलानाथ जी कहते हैं—"बाबूजी स्वयं लिख तो लेते थे, पर वह दूसरी ही लिपि में लिखते थे, जिसे दूसरा कोई पढ़ नहीं पाता था। पांडुलिपि तैयार कराते वक्त वह अपना लिखा हुआ पढ़ते जाते और एक आदमी लिखता जाता। उनके लिखने का कोई निर्धारित वक्त नहीं था। राह चलते भी गुनगुनाते रहते और कहीं ठहरकर कागज पर नोट कर लेते थे। द्वार पर चारपाई पर कभी नहीं बैठते। बस, जमीन पर चटाई बिछाकर बैठे रहते। अपने आपको सबसे छोटा आदमी मानकर चलते और उम्र में छोटा या वड़ा, सबका हाथ जोड़कर ही अभिवादन किया करते थे।"

अलबत्ता सादा जीवन, उच्च विचार की जीवंत प्रतिमूर्ति थे, कलाकारों के कलाकार मल्लिक जी। रोटी, भात, सत्तू—जो भी मिल जाता, ईश्वर का प्रसाद मानकर प्रेमपूर्वक खाते थे। भोजन के बाद वह कोई मिठाई जरूर खाते थे। मिष्ठान उपलब्ध न हो तो गुड़ ही सही। बिना किनारी की धोती, छह गज की मिरजई, सिर पर साफा और पैरों में चमरौधा जूता उनका पहनावा था।

जीवहिंसा के तो वह प्रबल विरोधी थे। भिखारी लोकनृत्य परिषद से जुड़े [illegible] ठाकुर ने इस संदर्भ में एक घटना का जिक्र करते हुए कहा था—"एक बार मेरे अजिया ससुर भिखारी ठाकुर ने ढेर सारे कछुओं को एक कमरे में बंद देखा। सबके पैरों में तागे बंधे हुए थे। दरअसल वह कोई व्यवसायी था, जो कछुओं की आपूर्ति का व्यवसाय किया करता था। भिखारी ठाकुर ने कीमत पूछकर पैंसठ रुपये अदा किये और सभी कछुओं के बदन पर अबीर पोतकर उन्हें गंगा नदी में छोड़ दिया। अपनी तमाम उपलब्धियों के बावजूद उनके मन में जरा भी अहम् भाव नहीं था। दिखावा तो उन्हें तनिक भी पसन्द नहीं था। एक दफा छपरा कचहरी पर उनके पहुंचते ही हजारों लोग-बाग उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़े। वहां के स्टेशन मास्टर ने उनसे मिलकर पूछा, 'ठाकुर जी, आपको देखने की खातिर फर्स्ट और सेकंड क्लास के तो कम, मगर थर्ड क्लास के लगभग सभी पैसेन्जर ट्रेन से उतरकर यहां आ पहुंचे हैं।'

उन्होंने मुस्कराते हुए कहा था, 'इसकी भी वजह है। मैं भी तो थर्ड क्लास का ही आदमी हूँ न!'[४]

नृत्यमंडली के कलाकारों की यादों में बसे हैं भिखारी।

भिखारी ने भी तो अपने सहयोगी कलाकारों की कलात्मक प्रतिभा की चर्चा अपनी कविताई में की थी :

बाबूलाल छांटत बाल, भेदहूँ के जानत हाल,
ओसहीं महेन्द्र कुछ ध्रुपद के गवैया हवे।
अजब रंग-ढंग बा धिनावन के ढोलक में।
तरह-तरह ताल के तफजूल बजवैया हवे।
सारंगी सरगम अली जान के लागत नीक,
हद हरमुनिया के जगदेव बजवैया हवे।
राम लछन जूठन के भिखारी बताय देत,
खास-खास हास रस नकल के करवैया हवे।

भिखारी ठाकुर के साथ नृत्यमंडली में चालीस वर्षों तक हारमोनियम वादन का कार्य कर चुके वयोवृद्ध भदई राम से जब चर्चा हुई तो उन्होंने भाव-विह्वल होकर कहा था—"मल्लिकजी सदा प्रतिभावान कलाकारों की तलाश में रहते थे और कला की कद्र किया करते थे। उनके जैसी शोहरत लोकभाषा के किसी भी कवि-कलाकार को शायद ही मिली हो। वह आम जनता के दिलों के कुशल चितेरे थे। राष्ट्रीयता तो उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। देश पर जब भी संकट के बादल मंडराते थे, वह भरपूर आर्थिक सहयोग किया करते थे। जब भी लड़ाइयां छिड़ीं, नृत्य का आयोजन करके उन्होंने 'वार फंड' में भरपूर राशि दी। बेतियाराज के यहां, जपला, गोपालगंज, दिघवारा आदि अनेक शहरों में टिकट लगाकर नृत्य के कार्यक्रम पेश किये गये। रोज की पन्द्रह-बीस हजार की भीड़ टूट पड़ती थी। सारे पैसे भारत सरकार को दिये गये।"

१० जुलाई, १९७१ (पुण्य तिथि) की याद आते ही भदई राम फिर कह उठते हैं—"चौरासी वर्ष की अवस्था में उनका निधन हुआ था। एकाएक लगा था, जैसे सूर्यास्त के बाद अचानक गहन अंधकार से सामना करना पड़ रहा हो। नृत्यमंडली तो आज भी है, कई सितारे भी हैं, मगर जब चांद ही न हो तो फिर इन तारों का क्या अस्तित्व! राय बहादुर का खिताब, बिहार सरकार से ताम्रपत्र, जिलाधिकारी (भोजपुर) से शील्ड, 'विदेसिया' फिल्म से प्रसिद्धि और जनता में अभूतपूर्व लोकप्रियता मिलने के बाद जब मैंने यह जानना चाहा कि उन्हें कैसा लगता है तो उन्होंने मुसकान बिखेरते हुए कहा था—'मैं तो जैसे पहले था, वैसे ही आज भी हूँ। सम्मान आदमी को नहीं, उसकी कला को मिलता है और जब

बाबूलाल छांटत बाल, भेदहूँ के जानत हाल,
ओसहीं महेन्द्र कुछ ध्रुपद के गवैया हवे।
अजब रंग-ढंग बा धिनावन के ढोलक में।
तरह-तरह ताल के तफजूल बजवैया हवे।
सारंगी सरगम अली जान के लागत नीक,
हद हरमुनिया के जगदेव बजवैया हवे।
राम लछन जूठन के भिखारी बताय देत,
खास-खास हास रस नकल के करवैया हवे।

भिखारी ठाकुर के साथ नृत्यमंडली में चालीस वर्षों तक हारमोनियम वादन का कार्य कर चुके वयोवृद्ध भदई राम से जब चर्चा हुई तो उन्होंने भाव-विह्वल होकर कहा था—"मल्लिकजी सदा प्रतिभावान कलाकारों की तलाश में रहते थे और कला की कद्र किया करते थे। उनके जैसी शोहरत लोकभाषा के किसी भी कवि-कलाकार को शायद ही मिली हो। वह आम जनता के दिलों के कुशल चितेरे थे। राष्ट्रीयता तो उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। देश पर जब भी संकट के बादल मंडराते थे, वह भरपूर आर्थिक सहयोग किया करते थे। जब भी लड़ाइयां छिड़ीं, नृत्य का आयोजन करके उन्होंने 'वार फंड' में भरपूर राशि दी। बेतियाराज के यहां, जपला, गोपालगंज, दिघवारा आदि अनेक शहरों में टिकट लगाकर नृत्य के कार्यक्रम पेश किये गये। रोज की पन्द्रह-बीस हजार की भीड़ टूट पड़ती थी। सारे पैसे भारत सरकार को दिये गये।"

१० जुलाई, १९७१ (पुण्य तिथि) की याद आते ही भदई राम फिर कह उठते हैं—"चौरासी वर्ष की अवस्था में उनका निधन हुआ था। एकाएक लगा था, जैसे सूर्यास्त के बाद अचानक गहन अंधकार से सामना करना पड़ रहा हो। नृत्यमंडली तो आज भी है, कई सितारे भी हैं, मगर जब चांद ही न हो तो फिर इन तारों का क्या अस्तित्व! राय बहादुर का खिताब, बिहार सरकार से ताम्रपत्र, जिलाधिकारी (भोजपुर) से शील्ड, 'विदेसिया' फिल्म से प्रसिद्धि और जनता में अभूतपूर्व लोकप्रियता मिलने के बाद जब मैंने यह जानना चाहा कि उन्हें कैसा लगता है तो उन्होंने मुसकान बिखेरते हुए कहा था—'मैं तो जैसे पहले था, वैसे ही आज भी हूँ। सम्मान आदमी को नहीं, उसकी कला को मिलता है और जब

कला सम्मानित होती है तो आदमी को अहम् के नशे में फूलना नहीं चाहिए। तब उस सम्मान की रक्षा करने की जिम्मेदारी भी कलाकार पर आ जाती है।''[५]

भिखारी ठाकुर ने भविष्यवाणी भी कर दी थी--

'कहत भिखारी शनीचर के दिन होई सउंसे गांव के बटोर।'

और वह दिन शनिवार ही था, जब उनका निधन हुआ। उस रोज इतनी मूसलाधार बारिश हुई कि अर्थी एक रात, एक दिन रखी ही रह गयी, हजारों लोगों ने शव-यात्रा में हिस्सा लिया था।

उन्होंने यह भी भविष्यवाणी की थी :

अबहीं नाम भइल बा थोरा, जब ई छूट जाई तन मोरा।

तेकरा बाद पचास बर्रासा, तेकरा बाद बीस दस तीसा।

तेकरा बाद नाम होइ जइहन, पंडित, कवि, सज्जन यश गइहन।

नइखीं पाठ पर पढ़ल भाई, गलती बहुत। लउकते जाई।

यह भविष्यवाणी भी सच होती जान पड़ती है। ज्यों ज्यों वक्त गुजर रहा है, भिखारी-साहित्य के नये सिरे से मूल्यांकन और शोध की प्रक्रिया तेज होती जा रही है। प्रो० तैयब हुसैन 'पीड़ित' ने भिखारी ठाकुर के व्यक्तित्व-कृतित्व पर शोध कर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। कई अनुसंधानकर्त्ता इस दिशा में सक्रिय हैं। मगर जोड़-तोड़ की राजनीति और तिकड़मबाजी में उनका जरा भी विश्वास न था।

एक बार उन्होंने प्रो० ब्रजकिशोर से पूछा था, 'बबुआजी, अभिनंदन-ग्रंथ क्या होता है?''

उन्होंने बताया कि किसी के मान-सम्मान में प्रकाशित उस व्यक्ति के व्यक्तित्व-कृतित्व पर लिखित रचनाओं का संकलन ही अभिनंदन-ग्रंथ कहलाता है। सुनते ही भिखारी ने कहा, ''मुझसे कई लोगों ने कहा कि आप अपना एक अभिनंदन-ग्रंथ लिखवाकर छपवाएं। बताइये तो भला, मुझे क्या जरूरत है इसकी?''

तथाकथित बौद्धिक और प्रशस्ति के भुक्खड़ों के गाल पर कैसा करारा तमाचा है यह! भिखारी को न तो ऐसे अभिनंदन-सम्मान की भूख थी, न सुख-समृद्धि की ही। वह ख्याति के शिखर पर तो पहुंचे, पर पारिवारिक व आर्थिक उत्थान

नहीं कर पाए। पारिवारिक निर्धनता, निरक्षरता और सामाजिक स्तर आज भी उनके भिखारी होने का ही सबूत प्रस्तुत करते हैं। उनकी दिली तमन्ना भी तो यही थी—'सदा भिखारी रहसु भिखार!'

मगर भिखारी ठाकुर के पास सबसे बड़ी पूंजी थी अपनी विलक्षण प्रतिभा सम्पन्नता की और मानवीय गुणों की। प्रो० ब्रजकिशोर के शब्दों में—"आज अगर कोई सही मायने में आदमी आपसे मिल जाय तो समझिए, आपका सौभाग्य है, आपका जन्म अकारथ नहीं गया। 'सोगहग मनई' के दर्शन जन्म-जन्म के पुण्य-प्रताप का फल होता है। भिखारी ठाकुर ऐसे ही एक सोगहग मनई थे जिसके दर्शन किसी संत-महात्मा के दर्शन जैसा ही पावन और पवित्र था।"[६]

भिखारी ठाकुर कोई महामानव तो नहीं थे, पर थे मनुष्यता की कसौटी पर सौ फीसदी खरे उतरने वाले एक सम्पूर्ण मनुष्य। एड़ी से चोटी तक, जन्म से मृत्यु तक और कलाकार से जनकवि व संत कवि तक एक सम्पूर्ण मनुष्य।

संदर्भ

१. भिखारी : महेश्वराचार्य, पृष्ठ १३४

२. भिखारी : दो शब्द, पृष्ठ ६

३. भिखारी ठाकुर ग्रंथावली : प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८

४. धर्मयुग : १ जून १९८६ : भोजपुरी के शेक्सपियर भिखारी के गांव में, पृष्ठ ३८

५. कादम्बिनी : जनवरी १९८७ : भिखारी की दिली तमन्ना थी..., पृष्ठ १५३

६. भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका : दिसंबर' ८७, भिखारी ठाकुर जन्मशती अंक, पृष्ठ ४५ से अनूदित।

अमरकृति 'विदेसिया' और विदेसिया शैली की रमणीयता

साहित्य की दो धाराएं साथ-साथ बहती रहती हैं—'लोक' और 'शिष्ट'। लोक-साहित्य लोक अथवा जन यानी धरती से रचे-बसे मेहनतकशों, कृषकों व मजदूरों को केन्द्र में रखकर रचा जाता रहा और दूसरे किस्म का साहित्य प्रबुद्ध वर्ग के लिए। मगर 'लोक' से उपजे लोग ही जब अपनी जड़ों को भूलने लगे और स्वयं को 'शिष्ट-विशिष्ट' के विभूषणों से अलंकृत करने लगे, तब से क्रमशः 'लोक' का लोप होता चला गया। फलतः अधिकांश लोक-साहित्य के रचयिताओं ने अपना नाम गुप्त ही रखा और यह परम्परा ही चल निकली। मगर लोकभाषा के अमर कवियों कबीर, तुलसी के काव्य की जन-जन में व्यापकता व अमरत्व को निरखकर तथाकथित बुद्धिजीवियों की बोलती बंद हो गयी। भिखारी ठाकुर भी उसी परम्परा के रचनाकार हैं जिन्होंने खुद को छिपाया नहीं, बल्कि कबीर की तरह ही डंके की चोट पर कहा कि वह अक्षर-ज्ञान से अधिक कुछ भी लिखना-पढ़ना नहीं जानते। मगर आज उनकी कृतियों की गूंज न सिर्फ भोजपुरी भाषी क्षेत्र में, वरन् पूरे उत्तर भारत में जन-जन की जुबान पर है।

जिन दिनों भिखारी का अभ्युदय हुआ, इस क्षेत्र में लोकनाटक के बजाय जोगीड़ा, नेटुआ के नाच आदि का ही प्रचलन था। जिस प्रकार भारतेन्दु ने बंगला लोकनाटकों से प्रभाव ग्रहण कर हिन्दी में 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भारत दुर्दशा' आदि नाटकों की प्रभावोत्पादक प्रस्तुति की, ठीक उसी प्रकार भिखारी ठाकुर ने बंगला के लोकनाटकों यात्रा, रामलीला और पूर्व प्रचलित नेटुआ के नाच, जोगीड़ा आदि से प्रेरित होकर भोजपुरी की प्रवृत्ति, प्रकृति, संस्कृति व सामाजिक दशा-दिशा के मद्देनजर लोकनाटकों की सार्थक सर्जना की। उनके व्यक्तित्व में नाटककार, कवि, सूत्रधार, अभिनेता, गायक के समाहित होने की वजह से वह धूमकेतु की भांति कला के आकाश में छा गये। तभी तो जगदीश चन्द्र माथुर ने उन्हें भरत मुनि की परम्परा का नाटककार कहा था।

कहा जाता है कि चारों वेद जब अनार्यों के लिए वर्जित हो गये तो देवताओं ने ब्रह्मा से सर्वसाधारण के लिए पंचम वेद की रचना हेतु अनुरोध किया और वह पांचवा वेद नाटक के रूप में सृजित हुआ। भरतमुनि ने उसका साधारणीकरण

कर नाटक की परम्परा की शुरुआत की। भिखारी ठाकुर ने एक तरफ अपने लोकनाटकों में भरत मुनि की परम्परा के अनुरूप सूत्रधार, मंगलाचरण, विदूषक, गीत, संगीत, नृत्य आदि का सफल समायोजन किया, वहीं नाटक के कथानक को आधुनिक समस्याओं से जोड़कर परम्परा तथा आधुनिकता के बीच एक सार्थक व सफल प्रयोग किया।

भिखारी के लोकनाटकों में 'विदेसिया' सर्वाधिक चर्चित-प्रतिष्ठित अमर कृति है। हालांकि इसकी मौलिकता पर भी सवालिया उंगली उठती रही है, पर पहले हमें विदेसिया की परम्परा और भिखारी की मौलिकता को बहुत गहरे पैठकर विचारना होगा।

आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आज तक रामकथा पर अनेक ग्रंथ लिखे गये, पर जन-जन की जो प्रचण्ड लोकप्रियता व प्रतिष्ठा गोस्वामी तुलसीदास के महाकाव्य 'रामचरित मानस' को मिली, वह किसी अन्य कवि को नहीं। ठीक वैसे ही, भिखारी ने 'विदेसिया' को इस प्रकार शोहरत की बुलंदी तक पहुँचाया कि वह सिर्फ उन्हीं की होकर रह गयी। तभी तो किसी अन्य कथानक पर निर्मित 'विदेशिया' फिल्म की विश्वसनीयता के लिए निर्माताओं की भिखारी ठाकुर से अभिनय करवाने की विवशता हो गयी। हालांकि उस फिल्म में उनका आर्थिक व मानसिक दोहन भी किया गया।

'सुन्दर सुभूमि भइया भारत के देसवा से, मोर प्रान बसे हिम खोह रे बटोहिया' रघुवीर नारायण के राष्ट्रगीत 'बटोहिया' की रचना के बाद इस धुन और टेक पर फिरंगिया, विदेसिया, सांवरिया, बनिजिया जैसे अनेक गीतों की सर्जना धड़ाधड़ हुई। भिखारी ठाकुर पर शोध करने वाले प्रो० तैयब हुसैन 'पीड़ित' का मानना है कि विदेसिया टेक पर रचित सहनीपट्टी (बक्सर) निवासी श्री राम सकल पाठक 'द्विजराम' की कृति 'सुन्दरी-विलाप' शीर्षक से १९०६ में प्रकाशित हुई थी, जबकि 'भिखारी' के लेखक महेश्वराचार्य १९१९ के आसपास छपी बतलाते हैं। भिखारी साहित्य के अध्येता अविनाश चन्द्र विद्यार्थी के अनुसार, इसका प्रकाशन वर्ष १९१२ है। पीड़ित जी १९०६ से भी पूर्व लोकप्रियता पा चुकी एक कृति 'सुन्दरी बाई' की चर्चा करते हैं, जबकि महेश्वराचार्य के मुताबिक 'सुन्दरी विलाप' के बाद उससे मिलती-जुलती एक पुस्तक 'प्यारी सुन्दरी वियोग' छपी थी, फिर श्रीनाथ शरण के नाम से सोलह और बीस भागों में 'विदेसिया' नाटक का प्रकाशन हुआ था जिसके कई गीतों पर भिखारी ठाकुर का नाम दर्ज था। डॉ० बजरंग वर्मा के

अनुसार, 'सुन्दरी विलाप' का लेखन १८९७ में और प्रकाशन १९०६ में मुजफ्फरपुर से हुआ था।

उपर्युक्त कृतियों, कृतिकारों व उनके प्रकाशन वर्ष के संबंध में विवाद हो सकता है, पर यह निर्विवाद रूप से सच है कि उनमें से कोई नाटक भिखारी का नहीं है। उनका नाटक 'विदेसिया' पहले 'कलियुग बहार' के रूप में प्रस्फुटित हुआ था और आगे चलकर पूर्णतः निखारकर 'बहरा बहार' के रूप में लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचा था। वही नाटक 'विदेसिया' शीर्षक से भिखारी ठाकुर ग्रंथावली के प्रथम खण्ड में संग्रहीत है जिसकी रचना १९१७ में हुई थी।

राम सकल पाठक 'द्विजराम' की कृति और भिखारी ठाकुर की कृति में मौलिक अंतर है। 'द्विजराम' रचित 'सुन्दरी विलाप' में विदेसिया को संबोधित सिर्फ गीत-रचनाएं हैं, जबकि भिखारी का 'विदेसिया' गीत-संगीत से भरा एक नाटक है और इसमें जहां भी गीत आये हैं, उनकी अंतिम पंक्तियों में किसी-न किसी रूप में भिखारी का नाम अंकित है।

'सुन्दरी विलाप' में 'द्विजराम' के गीत सभी काव्यगुणों से लैस हैं। पति के सौन्दर्य-वर्णन की दो पंक्तियां देखें :

ओठवा त हउए रामा कतरल पानवा से
नाकवा सुगनवा के ठोर रे विदेसिया।

विरह-विदग्धा सुन्दरी अपनी व्यथा-कथा का बयान करती हुई कह उठती है :

गौना कराइ सैंया घरे बइठवले से
अपने गइले परदेस रे विदेसिया,
चढ़ली जवनिया बैरिन भइली हमरी से
केई मोरा हरिहें कलेस रे विदेसिया।
अमकि के चढ़ीं रामा अपना अटरिया से
चारू ओर चितईं चिहाइ रे विदेसिया,
कतहूं ना देखीं रामा सैंया के सुरतिया से
जियरा गइल मुरझाइ रे विदेसिया।

मगर भिखारी के नाटक 'विदेसिया' में टेक 'विदेसिया' बटोही के स्वर में

सिर्फ तीन-चार गीतों में ही आया है। भिखारी चूंकि नयी-नयी शादी रचाकर स्वयं खड़गपुर भाग गए थे, अतः नई-नवेली दुल्हन की हृदयविदारक दशा को उन्होंने स्वयं महसूसा था और तीस वर्ष के युवाकाल में इसकी रचना की थी। नववधू को गांव में छोड़कर नौकरी की खोज में पददेश में जाने की लाचारी और पति की बाट जोहती नायिका की अंतवेदना। प्यारी सुन्दरी का बटोही के माध्यम से संदेश भिजवाना और बटोही का विदेशी को एक शहरी औरत के चंगुल सें छुड़ाकर न सिर्फ गांव लौटाना, बल्कि उस शहरी औरत को भी गांव में लाना। पूरी दास्तान इतनी मार्मिक और हृदयस्पर्शी कि पत्थरदिल व्यक्ति भी रो पड़े!

नायक के अचानक परदेश चले जाने पर नायिका भाव-विह्वल हो उठती है। एक तरफ वह पति के विश्वासघाती बर्ताव पर तो दूसरी तरफ उसके दुःख से दुखी हो उठती है। भला इस प्रकार पति-पत्नी का नाता तोड़ता है कोई! मगर किस प्रकार वह रास्ता तय कर रहा होगा? न पांव में जूते, न सिर पर छाता!

पियवा गइलन कलकातावा ए सजनी!
तूरि दिहलन पति-पत्नी-नातावा ए सजनी,
किरिन भीतरे परातवा ए सजनी!
गोड़वा में जूता नइखे, सिरवा पर छातावा ए सजनी,
कइसे चलिहन रहतवा ए सजनी!

खाली दिमाग शैतान का घर होता है न! नायिका भी तो तरह-तरह की आशंकाओं से घिरी रहती है। कभी वह जल बिन मछली जैसी तड़प उठती है तो कभी पति को कोसती हुई कहती है कि कैसा निपट नादान है उसका पति! इधर उसे तो अन्न का एक कण भी गले के नीचे नहीं उतरता और उधर वह मगही पान 'चाभ' रहा होगा! शरीर में उसका विरही मन भीतर-ही-भीतर कुहुक रहा है, मगर उसे क्या! वह तो कहीं मसखरी करता हुआ मुसकान बिखेर रहा होगा।

पिया निपटे नादानवां ए सजनी!
हमरा घोंटात नइखे कनवां भर अनवां ए सजनी,
चाभत होइहें मगही पानवां ए सजनी!
भीतरे रोवत बाड़न तनवां में मनवां ए सजनी,

छोड़त होइहन मुसुकानवां ए सजनी!

कहीं पति को किसी ने बहकाया तो नहीं? आखिर किसने मेरी जड़ में आरी भिड़ा दी है? रोज आठों पहर वाट जोहने का यह सिलसिला क्या कभी खत्म भी होगा?

बीतत बाटे आठ पहरिया हो डहरिया जोहत ना।
धोती पटधरिया धइके कान्हवा पर चदरिया हो
बबरिया झारि के ना,
होइबऽ कवना सहरिया हो बबरिया झारि के ना।
केइ हमरा जरिया में भिरवले बाटे अरिया हो
चकरिया दरि के ना,
दुख में होत बा जतसरिया हो चकरिया दरि के ना।
परोसि कर थरिया, दाल-भात-तरकरिया हो
लहरिया उठेला ना,
रहितऽ करितऽ जेवनरिया हो लहरिया उठेला ना।
कहत भिखारी मनवां करेला हर धरिया हो
उमरिया भरिया ना,
देखत रहतीं भर नजरिया हो उमरिया भरिया ना।

विरहिणी की व्याकुलता अनजान बटोही को भी रुला देती है। नई-नवेली दुल्हन की आंखों की नींद और दिल का चैन लुट चुका है। आखिर कौन-सी चूक हो गयी उससे कि पति इस कदर विमुख हो गया।

तोहरे कारनवां परानवां दुखित बाटे
दया करके दरसन दे द हो बलमुआं।
काइ कइलीं चूकवा कि छोड़लऽ मुलुकवा तूं?
कहलऽ ना दिलवा के हलिया बलमुआं।
सांवली सुरतिया सालत बाटे छतिया में
एको नाहीं पतिया भेजवलऽ बलमुआं।

कवना नगरिया डगरिया में पिया मोर
करतऽ होइबऽ घर-बास हो बलमुआं।
घर में अकेले बानीं, ईसवर जी राखऽ पानी
चढ़ल जवानी माटी मिलता बलमुआं।
बिरह के कूपवा में, जोगिनी का रुपवा में
तोहरे के अलख जगाइब हो बलमुआं।
मदन सतावत बाटे, छतिया फाटत बाटे
अनवां जहर लेखा लागत बा बलमुआं।
जनितीं त ध के हाथ, छोड़तीं ना तनी साथ
दिन-रात संगहीं में रहितीं बलमुआं।
ताकत बानीं चारू ओर, पिया आके करऽ सोर
लवटो अभागिनी के भगिया बलमुआं।
मोरा लेखा दुखिया कें मुखिया ना जग केहू
मुखिया बा तोहरे दरस के बलमुआं।
निज हाथे तेगा धरि, गरदन काटि करि
माटी में मिलाइ के परइलऽ बलमुआं।
कहत भिखारी नाई, आस नइखे एको पाई
हमरा से होखे के दीदार हो बलमुआं।

भिखारी के अनूठे बिम्ब, प्रतीक, उपमाएं हमें चमत्कृत किये बगैर नहीं रहतीं। मगर 'विदेसिया' में सिर्फ विरह-विदग्धा प्रोषित-पतिका की व्यथा-कथा ही नहीं है, बल्कि गांव से रोजी-रोटी के लिए नगर-महानगरों में भागते युवा के त्रासद भटकाव के बाद गांव वापसी की दास्तान भी है। नाटक में कुल चार पात्र हैं—विदेसी, प्यारी सुन्दरी, रंडी (रखेलिन) और बटोही।

भिखारी अपनी हर प्रस्तुति में इस बात को दोहराते थे कि गीत (सही मायने में) वही है जिसमें मालिक (ईश्वर) का नाम हो और तमाशा वही सार्थक है, जिसमें धर्म की चर्चा हो। अतः 'विदेसिया' का भी एक दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष है, जिसे सूत्रधार के रूप में भिखारी ने नाटक के आरम्भ में ही प्रकट कर दिया

है–"विदेसी ब्रह्म, बटोही धरम, रखेलिन माया, प्यारी सुन्दरी जीव। ब्रह्म-जीव दूनों जाना एही देह में बाड़न, बाकी भेंट ना होखे। कारन? माया। एकरा के काटे वाला बटोही धरम।

"आत्मा से परमात्मा काहे कुरोख हो गइलन? देना का झंझट से चाहे विरोध का झंझट से, जइसे स्त्री के पति छोड़के परदेस चल जालन, तइसे झूठ-झंझट से आत्मा से परमात्मा कुरोख हो जालन। बीच में कारन–रखेलिन स्त्री। झंझट से छोड़ा के मिलाप करा देबे खातिर बटोही –उपदेश। एह चारों के संवाद होखे के चाहीं। कइसन? प्यारी सुन्दरी के राधिकाजी लेखा, विदेसी के श्रीकृष्ण चन्द्र जी लेखा, रखेलिन के कुबरी लेखा, बटोही के ऊधोजी लेखा।"[9]

कहने का तात्पर्य यह कि 'विदेसी' कृष्ण, 'प्यारी सुन्दरी' राधिका, रंडी कुबरी और 'बटोही' उद्धव के प्रतीक हैं। और भी गहराई में उतरने पर विदेसी– कृष्ण (ब्रह्म), प्यारी सुन्दरी राधिका (जीव), रंडी-कुबरी (माया) और बटोही उद्धव (धर्म) हैं।। 'बटोही' 'विदेसी' को 'प्यारी सुन्दरी' से मिला देता है। यह नाटक का प्रतीकात्मक अंत है। धर्म हमें कर्मपथ पर चलकर लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है, मगर हम तो माया के जाल में इस कदर उलझे रहते हैं कि हमें लक्ष्य तक पहुंचने का होश ही नहीं रहता। मगर सच्चा धर्म वही है जो ब्रह्म और जीव का मिलन करा दे। कैसी विलक्षण बातें की हैं भिखारी ने!

कालिदास ने मेघ को दूत बनाया था, प्राचीन काल में कबूतर के माध्यम से संदेश भिजवाने का चलन था, मगर भिखारी ने एक जीते-जागते अनजान राहगीर (बटोही) को विरहिणी 'प्यारी सुन्दरी' का संदेश 'विदेसी' को भिजवाने का माध्यम बनाया।

'विदेसिया' नाटक के अमरत्व के मूल में इसकी अनेक खूबियां हैं। जन सामान्य की त्रासदी से जुड़ा मार्मिक ताना-बाना। भोजपुरी क्षेत्र की आम जनता कभी बाढ़ तो कभी सूखा और अकाल झेलने को अभिशप्त है। अतः नौकरी-चाकरी के जुगाड़ में बाल-बच्चों और घर-परिवार को गांव छोड़कर नगर-महानगर में छिछियाना आम बात है। पूरी कथा न सिर्फ यथार्थपरक, बल्कि विश्वसनीयता से भी ओत-प्रोत। बीच-बीच में रोचक प्रसंगों में आम दर्शकों की भागीदारी। कहीं-कहीं सहज ढंग से ही व्यवस्था पर करारा व्यंग्य। एक संवाद देखें :

बटोही–हम का जानत बानीं कि रेल में आ टिकठ में एक हालो दाम बुकनी हो जाई हो?

समाजी—ए बाबा, आजकल मसूल बढ़ गइल बा।

बटोही—बढ़ जाला अधेली-सूका कि एके हाली दहाना के दहाना?[२]

नाटक में सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र है गीतों की स्वरमाधुरी और उनकी लयात्मक प्रस्तुति। गीत समाज में प्रचलित लोक तर्जों पर आधारित, पर भिखारी के मौलिक संगीत से पूरी तरह ओत-प्रोत। लोरिकायन, जतसारी, सोरठी, बिरहा, बारहमासा, पूर्वी, आल्हा, पचरा, कुंवर विजई, निर्गुण, चौपाई, कवित्त, चौबोला आदि विभिन्न तर्जों पर रचित 'विदेसिया' के गीत कभी दिल की गहराई को छूने में तो कभी हंसाने और रुलाने में पूरी तरह से सक्षम हैं।

'विदेसिया' की प्रस्तुति में भिखारी ने जो शैली अपनायी, वह आगे चलकर इतनी प्रसिद्ध हुई कि उस लोकशैली का नामकरण ही हो गया 'विदेसिया शैली'। 'प्रणयी' जी का मानना है—" लोकभाषा की मन्दाकिनी जातक एवं आगमों के हिमालय से उतरकर अपनी अमंद गति से प्रवहमान हो साहित्य की प्रत्येक विधा को पावन बनाती गयी और उन लोभाषाओं का अमर साहित्य दैदीप्यमान हो उठा।

"सच तो यह है कि प्रत्येक देश जन-नाटकों के किसी-न-किसी रूप का प्रवर्त्तक रहा है। भारतवर्ष भी इसका अपवाद नहीं है। भारत में भी बंगाल यात्रा तथा कीर्तनियां नाटकों के लिए प्रसिद्ध रहा है। अवधी, पूर्वी, हिन्दी, ब्रज तथा खड़ी बोली में रास, नौटंकी, स्वांग एवं भांड आदि प्रमुख रहे हैं। राजस्थानी में रास, झूमर, ढोला आदि का प्रचार पाया जाता है। गुजराती भवाई के लिए ख्यात है। महाराष्ट्र में लड़िते एवं तमाशा प्रमुख हैं। तमिल में भगवत मेल की चर्चा आती है। बिहार में विदेसिया सर्वोपरि है।"[३]

विदेसिया शैली में सूत्रधार नाटक के कथानक तथा उद्देश्य की सार्थकता की ओर बीच-बीच में नृत्य तथा काव्यमय शैली में इशारा करता चलता है। सभी कलाकार मंच पर ही बैठे रहते हैं और ज्योंही किसी कलाकार को भूमिका आती है वह एकाएक खड़ा होकर अभियन करने लगता है। बगैर किसी ताम-झाम के पात्र सामान्य ढंग का मेकअप भी वहीं कर लेते हैं। कभी-कभी तो दर्शकों के बीच से होकर भी कोई पात्र मंच पर आ पहुँचता है और आरम्भ से अंत तक दर्शकों से पात्रों का जुड़ाव बना रहता है। शुरुआत मंगलाचरण से होती है, जिसमें ईश्वर की वन्दना की जाती है। भिखारी ने भोजपुरी क्षेत्र को और वहां के समाज को बहुत नजदीक से देखा और यह बात उनके अन्दर घर कर गयी थी कि बगैर

धर्म-अध्यात्म और भक्तिभाव से दर्शकों को जोड़े, समाज-सुधार की बात नहीं की जा सकती। अतः मंगलाचरण के साथ ही वह नाटक के मकसद और आदर्शवादी वक्तव्य को प्रस्तुत कर देते थे, बिल्कुल इतने सहज ढंग से कि दर्शक उसमें डूब जाते थे। यह विदसिया शैली की नहीं, भिखारी की रमणीयता है। तभी तो रामनाथ पाठक 'प्रणयी' लिखते हैं–

"भिखारी ने समाज की कुरीतियों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ देखा था। जत्था नाई होने के कारण समाज के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक अवसर पर भिखारी का प्रवेश निर्विरोध था। अतः भिखारी से समाज का कुछ भी कटु-मधु तिरोहित न रह सका। इस प्रकार, भिखारी ने जो कुछ देखा, जो कुछ पाया, उसे अपनी प्रतिभा का प्रसाद एवं वर्ण, रूप, गंध देकर अत्यन्त सरस-मनोहर बना दिया। भिखारी की रमणीयता का यही रहस्य था।"

आज विदेसिया शैली की धूम मची हुई है। बिहार की वर्चित नाट्य संस्था 'कला संगम' और अन्य कई रंगमंचीय संस्थाओं ने विदेसिया शैली को अपनाकर भिखारी ठाकुर के नाटकों–विदेसिया, गबर घिंचोर आदि के साथ ही अन्य नाटककारों की नाट्य कृतियों अमली (हृषिकेश सुलभ), माटी गाड़ी (मृच्छकटिकम् का नाट्य रूपांतर) की प्रभावोत्पादक प्रस्तुति कर अभूतपूर्व सफलता अर्जित की है।

भिखारी ठाकुर के 'विदेसिया' की ऐतिहासिक सफलता और जन-जन में पैठ के बाद नृत्य मंडलियों का नाम ही 'विदेसिया' चल पड़ा था। उसी प्रसिद्धि को भुनाने के लिए 'विदेसिया' फिल्म का निर्माण हुआ था और वहां भी भिखारी ठाकुर ने शोषण के सिवा कुछ नहीं पाया। आज भी कुछ तथाकथित सम्भ्रांत लोग एक तरफ भिखारी ठाकुर के नाटक 'विदेसिया' की मौलिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं, वहीं दूसरी तरफ भिखारी ठाकुर और उनकी विदेसिया शैली को भी भुनाना चाहते हैं। कवि-गुरू रवीन्द्र नाथ ठाकुर का संगीत 'रवीन्द्र संगीत' के रूप में ख्यात है, विद्यापति की स्मृति को 'विद्यापति संगीत' के रूप में जाना जाता है, मगर भिखारी ठाकुर की शैली विदेसिया शैली के रूप में अपनायी जा रही है। आज जरूरत है भिखारी संगीत की मौलिकता को पहचानने, परखने और सहृदयतापूर्वक अपनाने की। यदि भिखारी की नाट्य शैली 'विदेसिया' को हम 'भिखारी ठाकुर शैली' के नामकरण के साथ अपनाएं तो यह उस लोकनाटककार और विदेसिया शैली के प्रवर्त्तक के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। काश! हमारे रंगकर्मी इस दिशा में सार्थक पहल करते!

शोधकर्ता 'पीड़ित' ने 'विदेसिया' की उपयोगिता और प्रयोगधर्मिता पर दृष्टिपात करते हुए लिखा है—"विदेसिया शैली की उपयोगिता की ओर मैं ध्यान दिलाना चाहूँगा, जहां अद्यतन ओपेन थियेटर की कल्पना पहले से ही मौजूद है। अभिनय नृत्य विद्या पर आधारित है। उसके पात्र बहुधा मंच पर ही सारे परिधान-परिवर्तन और मेकअप के ताम-झाम पूरा कर लेते हैं और दर्शक से जुड़ने की बात तो यहां तक है कि दर्शक पात्रों को टोकते चलते हैं और कलाकार भी अभिनय के दौरान बातचीत में दर्शकों को समेटे चलता है।

"दृश्य विधान के साथ ही दर्शक का मनोवैज्ञानिक खिंचाव तो तब रंग लाता है, जब भिखारी ठाकुर के पात्र भरी महफिल में एक छोटी लाठी की मदद से कभी हल चलाने की नकल करता है तो दर्शक उसको किसान के रूप में देखने लगता है और कभी बन्दूक की तरह निशाना साधने लगते है तो जंगल का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

"एक ओर इत्ती-सी लुगरी या मैली चादर तानकर कोहबर-घर का मजा दर्शकों में बांटा जाने लगता है तो दूसरी ओर बाजे-गाजे के साथ दरवाजे पर लगी बरात की बेचैनी लोग महसूसने लगते हैं। हालांकि वास्तव में होता कुछ भी नहीं।

"इन और ऐसे प्रयोगों के बावजूद एक ओर इस प्रस्तुतिकरण की जड़ परम्परा में है जो बहुत गहरी है तो दूसरी ओर इसमें आधुनिक प्रयोग की ढेर-सारी गुंजाइशें अभी भी शेष हैं।"[४]

निस्संदेह विदेसिया शैली में संभावनाएं अनन्त हैं। जरूरत है रंगकर्मियों को इसकी तह में छिपी संभावनाओं को तलाशने की और भिखारी ठाकुर की इस जीवंत परम्परा को आधुनिकता और आधुनिक संदर्भों-समस्याओं से जोड़कर नये आयाम देने की। तभी विदेशिया शैली की रमणीयता चिर नवीन बनी रहेगी।

संदर्भ

१. भिखारी ठाकुर ग्रंथावली : प्रथम खण्ड, पृष्ठ १०

२. वही, पृष्ठ २८

३. भिखारी : भूमिका, पृष्ठ ६

४. भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका जनवरी ८४, पृष्ठ २८ से अनूदित।

लोकनाटकों में सामाजिक चेतना की सुगबुगाहट

जिन दिनों भिखारी ठाकुर भोजपुरी नाटकों के लेखन और मंचन के क्षेत्र में उतरे, उस वक्त नेटुआ का नाच, जोगीड़ा के साथ ही नौटंकी उनके लिए चुनौती थी। उन्होंने बंगाल की प्रचलित विधा 'यात्रा' से तो प्रेरणा ली ही, रामलीला और रासलीला से भी प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सके। जनता का दिल जीतने के लिए उन्होंने उन दिनों प्रचारित तमाम लोकधुनों में अभिनेय गीत रचकर अपने नाटकों में पिरोया और उनका नया नामकरण किया 'तमाशा'।

मगर भोजपुरी नाटकों में भिखारी के हस्तक्षेप के पूर्व भी कोई आंचलिक परम्परा अवश्य रही होगी जो आज भी शोध का विषय है। डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त ने इस ओर इशारा करते हुए लिखा भी है—"भिखारी ठाकुर के नाटक और उनके रंगमंच की बात कुछ लोगों को अजीब लग सकती है। आज जब हम नाटकों, अभिनयों और रंगमंचों की बात करते हैं तो हमारी कल्पना में होते हैं कालिदास और भास, प्रसाद और गोविन्ददास, शानदार थियेटर हॉल और आडिटोरियम, रंगीन पर्दों से सुसज्जित स्टेज, चमकते-दमकते कपड़ों से आवृत अभिनेता। हम यह सोच ही नहीं पाते कि नगरों से बाहर भी गांवों का अपना कोई रंगमंच हो सकता है। वहां के लोग भी नाटक और अभिनय को जानते और समझते हैं। पर तथ्य यह है कि लोकजीवन में उसका महत्व नागरिक जीवन से कम नहीं है। अंतर केवल इतना ही है कि उसमें चमक-दमक नहीं होती। भूलना न होगा कि रामलीला और नौटंकी लोकमानस की ही कल्पना है। बंगाल की 'यात्रा' भी यही चीज है। फिर भिखारी ठाकुर का 'विदेसिया का नाच' क्यों न नाटक माना जाय! भिखारी ठाकुर के भोजपुरी सांस्कृतिक जीवन में प्रवेश करने से पूर्व इस क्षेत्र का रंगमंचीय स्वरूप क्या था, यह अपने आप में शोध का विषय है। 'नटुआ का नाच' और 'जोगीड़ा' के मूल में निश्चय ही कोई मूल आंचलिक परम्परा रही होगी। उसी को बीजरूप में ग्रहणकर बंगाल की 'यात्रा' से प्रेरणा प्राप्त कर भिखारी ठाकुर ने रंगमंच को पुनरुज्जीवित किया है। उनके रंगमंच का जो स्वरूप लोगों के सामने आया, वह भोजपुरी के लिए सर्वथा नूतन है। उस समय तक 'नटुआ का नाच' के आगे की कल्पना उनके बस के बाहर थी, अतः जब भिखारी ठाकुर अपना पहला नाटक 'विदेसिया' लेकर मंच पर उतरे तो उन्हें और कुछ न सूझा उसे 'विदेसिया का नाच' कहकर पुकारने लगे। और वह लोगों

को इतना मन भाया कि भिखारी ठाकुर अपने मंच से कोई भी नाटक प्रस्तुत करें, वह 'विदेसिया का नाच' ही कहा जाता।''[१]

मगर वह 'विदेसिया का नाच', जिसने आगे चलकर एक पुख्ता लोकनाट्य-शैली 'विदेसिया' को जन्म दिया, कोई मामूली खेल-तमाशा नहीं था। सच तो यह है कि भिखारी ने आम जनता की दुखती रग पर हाथ रख दिया था और तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों, बहुत गहरे फैली-पसरी बुराइयों, कुरीतियों और पाखण्डों का खुलासा कर उनके नतीजे से उन्हें आगाह करा दिया था।

उन दिनों हमारा ग्रामीण समाज कैसा था? पीढ़ी-दर-पीढ़ी अशिक्षा व्याप्त थी। शराब के नशे की लत ने परिवारों को तबाह कर रखा था। तिलक-दहेज जैसे सामाजिक कोढ़ ने लड़कियों को उपभोक्ता वस्तु का दरजा दे रखा था और उनकी बिक्री धड़ल्ले से की जाने लगी थी। बाल-विवाह की प्रथा थी और विधवाओं पर अत्याचार हो रहे थे। जमींदारों का शोषण बदस्तूर जारी था और शोषित-उत्पीड़ित दलित वर्ग लुटने के लिए अभिशप्त था। गंगा स्नान, तीर्थों और मेलों में जाने वाली अबलाओं की आबरू के साथ खिलवाड़ किया जाता था। गांव के अभावग्रस्त निर्धन युवक घर-परिवार से विमुख होकर रोजी-रोटी की चिन्ता में महानगरों में छिछियाते फिरते थे और उनकी नव विवाहिताएं अपने नसीब पर नौ-नौ आंसू रोतीं 'बड़मुंहवा' लोगों की काली करतूतों और हवस का शिकार होती थीं। बाढ़-सूखा की विभीषिका झेलता भोजपुरी समाज नारकीय जीवन जीने को विवश था।

भोजपुरी क्षेत्र के एक साधनहीन परिवार में जन्म लेकर भिखारी ठाकुर ने तत्कालीन गंवई परिवेश को अपनी नंगी आंखों से देखा-परखा और विश्लेषित किया था। इसी वजह से उनका कवि व कलाकार-हृदय हाहाकार कर उठा था और वह प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए उचित माध्यम की तलाश बेचैनी से करने लगे थे। कुंभकर्णी नींद में बेसुध सोयी जनता की नब्ज को टटोलकर उन्होंने गीत, संगीत, नृत्य को अपने नाटकों में पिरोया था। गीतों में तमाम लोकप्रिय लोकधुनें—बिरहा, सोरठी, जतसारी, लोरिकायन, आल्हा-ऊदल, पूर्वी, कुंवर बिजई, पचरा, चौबोला, झूमर के साथ ही दोहे, चौपाई, कवित्त आदि छन्दों को दूध में पानी की तरह मिलाकर एकाकार कर दिया था। बातों-ही बातों में तथ्य की तह में ले जाने के लिए जहां उन्होंने एक महत्वपूर्ण पात्र 'सूत्रधार' का सूत्रपात किया, वहीं हास्य-व्यंग्य की फुलझड़ियां छोड़ने की गरज से विदूषक के रूप में 'लबार' को सृजित किया।

भिखारी की पारखी नजरों ने तत्कालीन ग्रामीण जनजीवन के मनोभावों और सुसुप्तता को अत्यन्त निकटता से निरख लिया था और उनके मन में सामाजिक चेतना जगाने की सुगबुगाहट होने लगी थी। धर्म-अध्यात्म की चासनी में लपेटकर उन्होंने स्वस्थ मनोरंजन की ऐसी जादुई पुड़िया दर्शकों को थमायी कि वे सभी 'वाह-वाह' कर उठे और उनका रोम-रोम पुलकित, रोमांचित व झंकृत हो उठा।

मगर इसके लिए भिखारी को कितनी मेहनत-मशक्कत करनी पड़ी होगी, कितने विरोधियों से लोहा लेना पड़ा होगा, कितने गांवों-गलियों की धूल फांकनी पड़ी होगी, इसका अन्दाजा वही लगा सकता है, जिसे शुरुआती दौर की संघर्षशीलता का अहसास हो। अपने नाटक में 'एक में अनेक' अथवा मनोरंजन की सभी जरूरतों की सोद्देश्य पूर्ति करने वाले भिखारी अपनी विलक्षण, किन्तु विश्वसनीय प्रस्तुतियों की वजह से ही जनमानस पर छा पाए। जिसे दर्शक निरक्षर-गंवार समझ रहे थे, वह तो उनके मन, घर-परिवार और समाज की सच्चाइयों का अद्भुत चितेरा निकला।

तभी तो उस चितेरे की कारगुजारी का बयान करते हुए डॉ० शंकर प्रसाद कहते हैं—"आम आदमी के बीच संदेश का प्रसारण कोई आसान काम नहीं। बहुत बारीकी से कथा का जाल बुनना पड़ता है। तब कहीं बात बनती है। भिखारी ने प्रवचन देने का काम नहीं किया, अपितु अपने कथ्य में ही संदेश को इस तरह गूंथ दिया कि सुनने और देखने वालों को कुछ भी आरोपित नहीं लगे। यह दुर्लभ शैली किसी महान कलाकार को ही प्राप्त होती है। अपनी वाणी में चाबुक और होठों पर मुस्कुराहट लिए वह गली-गली, डगर-डगर, गांव-गांव घूमते रहे। लगभग बीस-पच्चीस कलाकारों की टोली सिर पर टीन का बक्सा उठाये, हाथों में लाठी लिए चल पड़ती थी तमाशा दिखाने। जिस गांव में भिखारी ठाकुर का नाच होता, लोग टूट पड़ते। जवार का जवार भागा चला आता। रात भर का मनोरंजन। पेट में बल पड़ जाये, ऐसा हास्य। रोंगटे खड़े हो जायें, ऐसे नाटकीय मोड़ तथा व्यंग्य की पैनी धार में मन के तार-तार झंकृत हो जायें।"[२]

'विदेसिया' के बाद भिखारी ठाकुर का सर्वाधिक स्तरीय नाटक है 'गबरघिचोर', जिसके दमदार कथ्य तथा प्रस्तुति की वजह से आज भी उसकी प्रासंगिकता यथावत बनी हुई है। समाज में नारी की अबला-सी नियति, पर उसके सबल मातृत्व गुणों से लबरेज है यह नाटक। भिखारी ने यह साबित कर दिया है कि पितृप्रधान समाज में भी नारी का हक ही सर्वोपरि है।

'गबरघिचोर' के मुख्य पात्र हैं—गांव का परदेशी युवक गलीज, आवारा युवक गड़बड़ी, गलीज की पत्नी गलीज बहू, गबरघिचोर और पंच आदि। गांव का युवक गलीज जब अपनी पत्नी को गांव में ही छोड़कर परदेश चला जाता है तो वहां का आवारा नौजवान गड़बड़ी उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने में सफल हो जाता है और इस प्रकार गबरघिचोर का जन्म होता है। कुछ साल बाद गलीज गांव आकर, लौटते वक्त गबरघिचोर को अपने साथ परदेश लिवा जाना चाहता है, पर अपनी पत्नी गलीज बहू को नहीं। पत्नी स्वयं परदेश न जाने को राजी हो जाती है, पर वह अपने बेटे को भी गांव से नहीं जाने देना चाहती। गलीज बेटे पर अपना हक जताता है। उधर गड़बड़ी को जब यह खबर मिलती है तो वह साबित करता है कि चूंकि उसके गलीज बहू के साथ नाजायज संबंध थे, अतः उसका बेटा उसे ही मिलना चाहिए। तीनों ही गबरघिचोर पर अपने-अपने दावे पंचों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। गलीज पिता होने की सामाजिक मान्यता का दावा करता है तो गड़बड़ी अपने और गलीज बहू के शारीरिक संबंधों का। अंततः जब गलीज बहू की बारी आती है तो वह अपना बयान पेश करती हुई कहती है :

घर में रहे दूध पांच सेर, केहू जोरन दिहल एक धार।

का पंचाइत होखत बा, घीउ साफे भइल हमार।।

पहले तो पंच का फैसला गलीज बहू के ही पक्ष में इस तर्क के साथ होता है कि 'जेकर दूध, तेकर घीव।' मगर जब गलीज और गड़बड़ी पंच को रिश्वत का प्रलोभन देते हैं तो पंचों द्वारा बेटे पर तीनों के समान हक की घोषणा होती है और उसके शरीर के तीन बराबर टुकड़े कर तीनों को एक-एक टुकड़ा देने का निर्णय होता है। जल्लाद कहता है कि वह गबरघिचोर के शरीर के जितने टुकड़े करेगा, उतनी ही चवन्नी फीस लेगा। गलीज और गड़बड़ी पैसे दे भी देते हैं। मगर गलीज बहू बिलखती हुई कहती है कि उसके बेटे को कटवाया न जाय, बल्कि गलीज या गड़बड़ी—किसी एक को जिन्दा ही दे दिया जाय। आखिरकार पंच का फैसला होता है कि जिसे अपने बेटे की जान की परवाह नहीं, उसका बेटा कैसा! और गबरघिचोर को उसकी मां को सुपुर्द कर दिया जाता है। हास्य-व्यंग्य से ओत-प्रोत यह नाटक अपनी मर्मस्पर्शी छाप छोड़ता है।

कुछ लोग 'विदेसिया' की भांति 'गबरघिचोर' को भी विवाद का विषय बनाते हुए इसकी मौलिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। पर समालोचक राम निहाल

गुंजन का मानना है–" भिखारी ठाकुर के इस नाटक की परिकल्पना मौलिक है। लेकिन जैसा कि नाट्यकर्मियों के बीच प्रचलित धारणा है, इस तरह का कथानक दूसरी कथाओं, लोककथाओं में भी मिलता है। बुद्ध की जातक कथाओं में भी इस तरह की एक कथा वर्णित है, जिसमें किसी मायाविनी मां और वास्तविक मां के बीच एक बच्चे पर अधिकार की बात आती है और बुद्ध के निर्णयानुसार दोनों माएं बच्चे को एक रेखा के पार खींचने को तैयार तो होती हैं, लेकिन बच्चे को पीड़ा से रोता देखकर असली मां उसे खींचना छोड़ देती है और महात्मा बुद्ध यह देखकर असली मां के पक्ष में ही अपना निर्णय देते हैं। ब्रेख्त ने भी 'खड़िया का घेरा' नाटक इसी कथानक पर लिखा है। लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि भिखारी ठाकुर ने इन कथाओं से प्रभाव ग्रहण किया होगा। कारण कि लगभग निरक्षर होने के कारण वह अपने आशुकवित्व के बल पर लोक प्रचलित कथा रूढ़ियों को अपने नाटकों का विषय बनाते थे। यह तथ्य ही सत्य के ज्यादा करीब है।"[३]

भिखारी के नाटकों में नारी की दयनीयता का बड़ा ही हृदय-विदारक चित्र उकेरा गया है। कुल मिलाकर, वह उपयोग और उपभोग की बाजारू वस्तु से अधिक कुछ भी नहीं है। सदियों से दासता और पुरुष की पाशविकता का शिकार बेबस नारी। तभी तो, कभी वह बाल-विवाह की जंजीर में जकड़ी जाती रही है तो कभी बेमेल विवाह की बेड़ियों में। नतीजतन, जीवनभर विधवा होकर विलाप करती रहना ही उसकी नियति है। भिखारी ठाकुर के 'विधवा-विलाप', 'बेटी-वियोग' नाटकों का ताना-बाना इन्हीं मूलभूत तथ्यों और कथ्यों पर आधारित है। 'विधवा-विलाप' में जहाँ एक बेसहारा विधवा की दुर्दशा का कारुणिक चित्र खींचा गया है, वहीं 'बेटी-वियोग' में अपने दादा की उम्र के पति के साथ ब्याही गयी औरत की अनकही दास्तान है।

अपनी बेटी की बिक्री और बेमेल विवाह पर पति को कोसती हुई कन्या की मां कहती है :

अपने मन के भइलऽ भूपा।
बेटी काटि के डललऽ कूपा।।
बूढ़ा वर से शादी कइलऽ।
गांव-घर का चीत से गइलऽ।।

अइसन जग में कइल ना कोई।
जिनिगी भर मोर बबुई रोई।।
दिल से दया दूर कइ दिहलऽ।
अजस पातक सिर पर लिहलऽ ।।
सरप होके दिहलऽ डंस।
अब ना बेटी के बढ़ी बंस।।
बाप ना हउअऽ, हउअऽ भूत।
अब ना बेटी खेलइहन पूत।।
कहे भिखारी लालच कहलऽ।
लोक-वेद के इज्जत खइलऽ।।

मगर आजीवन अपनी बिटिया को छछनाने वाले पत्थरदिल बाप का हृदय न तो पसीजने वाला था, न पसीजा ही।

'ननद-भउजाई' नाटक में ननद-भाभी के कटु-मधु संबंधों की जीवंत झांकी प्रस्तुत की गयी है। दोनों के रिश्तों में एक तरफ जहां तनाव और कटुता है, वहीं छेड़छाड़, नोंक-झोंक, अपनत्व व प्यार का लचीलापन भी है। अपनी ननद को भटकाव से मुक्ति दिलाने के लिए भाभी नेक सलाह देना भी अपना फर्ज समझती है। वह उसे पतिव्रत धर्म का पालन करने की सीख देती है :

सुनलीं बेयान तोर, हुलसल करेज मोर, अइसन गेयान कहवां पवलू ननदिया।
घर में के छोड़ि कंत, बाहर होखे जइबू संत, केहू नाहीं कही तोहे भल हो ननदिया।
छोड़िके सकल भरम, धरऽ पतिबरत धरम, भूत बनि जइबू भभूत से ननदिया।
जब तक रहे देह, पति पद में राखऽ नेह, मालावा से होइबू न निहालावा ननदिया।
चढ़ल बाटे जुवापन, ठंढा करके रहऽ मन, सगरो से होइबू 'धन-धन' हो ननदिया।
कहत भिखारी नाई, करब हम जल्दी उपाई, जेहि विधि सब बनि जाई हो ननदिया।

'भाई-विरोध' नाटक संयुक्त परिवार के विघटन की कथा का आईना है। परिवार में पढुवा और अनपढ़, मेहनती और कामचोर सदस्यों के बीच सामंजस्य हो भी तो कैसे! तिस पर भी कुटनी बुढ़िया फूट का बीजारोपण करने से बाज नहीं आती। फिर तो संयुक्त पारिवारिक माहौल में बिखराव आना स्वाभाविक है।

मगर अंततः आंख खुलने पर पश्चाताप के आंसू बहे बगैर नहीं रहते। भाई उपद्दर अपनी बुद्धि को कोसता हुआ कहता है

हमार कवना हेत से बिगड़ गइल मतिया।
लोक लाज सब खोके, भाई से अलग होके
सहत बानीं बहुत विपतिया।
कइलीं बहुत पाप, भाई मारि देलीं आप
घेरलसि आइके कुमतिया।
पूका फारि रोवत बानीं, सुनऽ भगवान दानी
केहू ना भइल संघतिया।
कहत भिखारी दास, नरक में भइल बास
धोखा दिहलसि औरतिया।

अंतिम पंक्ति 'धोखा दिहलसि औरतिया' के बहाने नारी के दगाबाज चरित्र को उभारा गया है। ऐसी ही एक सौतेली मां धनाभाव में अपने बेटे की हत्या करने पर उतारू हो आती है और इस कथानक का फैलाव 'पुत्र-बध' नाटक में बखूबी हुआ है।

'कलियुग प्रेम' (पियवा नसइल) में नशा सेवन के दुष्परिणामों से आम जनता को आगाह कराना नाटककार का उद्देश्य रहा है। नई पीढ़ी को सतर्क करते हुए भिखारी कहते हैं :

बेटा-बेटी भूखे मुअसु, माई-बाबू भइलन सूर।
मेहर के तन पर वस्तर नइखे, बबुआ नशा में बाड़न चूर।।

'गंगा-स्नान' नाटक में घर में ही रहकर बड़े-बुजुर्गों की सेवा करने पर बल दिया गया है और गंगा-स्नान अथवा अन्य मेलों में पुत्र-प्राप्ति की कामना से जाने वाली औरतों को ढोंगी पंडितों के पाखण्ड का शिकार होने और अपना सर्वस्व गंवाने की दास्तान है। मलेछू बहू बिलखती रह जाती है:

गइलन हो बलमू अखड़ेर जानवां!
पति अपमान जान पर पहुंचल
परि गइल सासू के कलपनवां।

मेला के बीचे अकेला परल बानीं
ठग लेके भागल सब धनवां।
उतरल गहनवां बहनवां करब काइ
भइल भेयावन हमार तनवां।

भिखारी धर्म के नाम पर व्याप्त आडम्बर के घोर विरोधी हैं। यह कैसा विरोधाभास है कि जीते-जी तो बेटे-बहू सास-श्वसुर को कुत्ते-कुत्ती से भी बदतर जिन्दगी जीने को विवश कर देते हैं, पर मरणोपरान्त दान-दक्षिणा और श्राद्ध में जीभर खर्चकर दिखावा करते हैं:

जिअता में कुती-कुत्ता बनिके पतोह-पूता
कटलन खूब ललकारी,
मुअला प पिण्डा-पानी, दान होई सोना-चानी
लोग खाई पूड़ी-तरकारी।

अब नाटकों में 'राधेश्याम बहार', 'नाई बहार', 'जय हिन्द खबर' आदि मुख्य हैं। नाटककार भिखारी ठाकुर सही मायने में समाज सुधारक हैं और वह सामाजिक चेतना जगाने में अग्रणी भूमिका अदा करते हैं। सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों और अंधविश्वास के तो वह कट्टर विरोधी हैं। नारी पर ढाये जा रहे जुल्मों का भी वह जमकर विरोध करते हैं और अबला की सबलता का सबूत पेश करते हैं। बाल-विवाह, बेमेल विवाह, बेटी की बिक्री, दहेज की दानवता, पर्दा-प्रथा आदि बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकने में उनकी भूमिका उन्हें शेक्सपियर, प्रेमचन्द, शरत, स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी की पंक्ति में ला खड़ा करती है।

नाटकों में गीत-संगीत इस प्रकार रचे जाते थे कि उनका अभिनय अत्यन्त सहज ढंग से किया जा सके। पात्रों के नाम उनकी भूमिकाओं के अनुरूप ही साफ-स्पष्ट होते थे और संवाद हास्य-व्यंग्य से ओत-प्रोत भोजपुरी की खांटी माटी में रचे-बसे होते थे। उनके नाटकों की तीसेक पुस्तिकाएं छपी थीं जिनमें कइयों में नाटक के सिर्फ गीत वाले हिस्से ही छपे थे। गद्य-भाग उनके कलाकारों की जुबान पर होता था और संवाद इतने सधे हुए तथा सम्प्रेषणीय होते थे कि वे सीधे दर्शक के दिल में तीर-से जा चुभते थे और कभी गुदगुदी होती थी तो कभी मीठी चुभन।

जिन्होंने भिखारी के नेतृत्व में उनके नाटकों का मंचन उनके जीवनकाल में नहीं देखा, उन्हें नाटककार भिखारी ठाकुर और उनके नाटकों को समझने व विश्लेषित करने में खासी कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। इस संदर्भ में महेश्वराचार्य की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—" भिखारी के नाटकों की छोटी-बड़ी दर्जनों पुस्तिकाएं हैं और वे सभी एक से बढ़कर एक बेहतर हैं। कहना मुश्किल है कि उनका कौन-सा नाटक कितना अच्छा है। अपनी पुस्तिकाओं में भिखारी ने पद्य-भाग को लिखना अनिवार्य समझा था; गद्य-भाग को नहीं। इससे उनका मतलब यही था कि पद्य-भाग विस्मृत हो सकता था और गद्य-भाग को तो नित्य ही गढ़ा जा सकता था। कलाकारों और अभिनेताओं को पद्य-भाग कंठस्थ कराना पड़ता था। अतः वह भाग लिख दिया गया था। गद्य-भाग को नित्य नवीन ढंग से रच लेने में उनके सभी अभिनेता अभ्यस्त और पारंगत थे। अतः गद्य-भाग अलिखित रह गया और वह उनके जीवन के साथ ही विसर्जित हो गया।

"तो भिखारी के विषय में बराबर यही कहा जायेगा कि उनके नाटक लिखावट में संक्षिप्त और दिखावट में प्रदीप्त होते थे। भिखारी की शोभा मंच पर होती थी। वह मंच के बादशाह थे। स्वांग के क्षेत्र में उतरकर वह किसी भी विषय का जीता-जागता रूप खड़ा कर देते थे। अभिनय में प्राण भर देते थे। जिन्होंने मात्र उनकी पुस्तिकाओं का ही अवलोकन किया है, वे नाटककार भिखारी को पूरा-पूरा नहीं जानते; जानते हैं वे, जिन्होंने (भिखारी की जीवितावस्था में) उनके नाटकों को मंच पर देखा है। पुस्तिकाओं में यदि भिखारी पचास प्रतिशत हैं तो सौ प्रतिशत थे अपने मंच पर। उनकी नाट्यकला की यह खूबी थी कि मंच पर आते ही चारों तरफ सन्नाटा छा जाता था। गोली से नहीं दबने वाली दबंग जनता कान पात कर भिखारी का भाषण सुनती थी। क्या मजाल कि भिखारी के मंच पर होते किसी के मुंह से कोई आवाज निकल सके। भिखारी विभूति थे। उनमें अप्रतिम प्रतिभा थी। वह जो कुछ गुरुजनों से सीखते थे, कंठस्थ कर लेते थे। इस प्रकार कुछ अनुभव की बातें, जिन्दगी की मार्मिक अनुभूतियों को वह नाटक के रूप में लिख लेते थे और फिर उसका समाज में प्रदर्शन भी करते थे। जब से भिखारी ने नाट्य प्रारम्भ किया था, तब से कतिपय लोगों ने तालीम लेकर अपना 'गिरोह' बना लिया, मगर कोई भिखारी नहीं बन सका। भिखारी भोजपुरी के गौरव थे। उन्होंने दिल खोलकर अपने को लुटाया। जिज्ञासु चाहें तो पाएंगे उनमें ढेर-का-ढेर रत्न।"[४]

वरिष्ठ कवि अविनाश चन्द्र विद्यार्थी भिखारी-साहित्य के न सिर्फ अध्येता,

बल्कि उनके नाटकों के प्रत्यक्षदर्शी भी रहे हैं। तत्कालीन नाट्यविधाओं की हैसियत और भिखारी के नाटकों की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करते हुए एक व्याख्यान में विद्यार्थी जी ने कहा था–" भिखारी के तमाशा या नाटक आज के हिन्दी नाटकों की तरह नहीं, बल्कि बहुत कुछ नौटंकी जैसे थे जो एक संगीत-नृत्य प्रधान ऐसी विधा थी जिसके सभी पात्र–राजा से लेकर योगी तक–मंच पर नाचते-गाते थे। नौटंकी के पात्र गीत गाते हुए आते और गाते-गातें डुग्गी के ताल पर नाचने भी लगते। इसी से मिलता-जुलता भांड का नाच था जिसमें नाच के साथ ही 'हरबोलाई' (यूहड़ विदूषकपन) की भी प्रधानता थी। ऐसी ही पृष्ठभूमि में, गायन-वादन और पद्यमय कथोपकथन वाले गुंजायमान सांस्कृतिक वातावरण को पूरी तरह अंगीकृत करते हुए अपनी माटी के भावों से लैस भोजपुरी में लोककलाकार भिखारी ठाकुर की 'विदेसिया' शैली वाले नाटक विकसित हुए। इसके पहले इस इलाके की भाषा में गीत-गवनई भले ही हो, नाटक नहीं थे। यहां ढोलक, पखावज, झाल, कठताल और जोड़ी के साथ नेटुआ का नाच, गोंड़ के नाच और धोबी-नाच थे। इन्हीं 'नाच में करतूत कढ़ावल जेकर भिखारी नांव'। इस प्रकार, भोजपुरी नाटक (तमाशा) के प्रवर्त्तक थे भिखारी ठाकुर। पारसी थियेटर और नौटंकी के ढेर सारे तूल-ताल वाले साज-बाज को छोड़कर ढोलक, सारंगी (हारमोनियम भी), झाल, कठताल और जोड़ी से भिखारी के नाच में काम लिया गया। परदा-स्टेज के बदले शामियाना में चौकी पर अथवा खुले आसमान तले दरी-टाट वाले लोकमंच पर इन नाटकों का मंचन हुआ। 'छोकरा का नाच' वाली पारम्परिक पोशाक-पेशवाज को छोड़ दिया गया–पूरी बांह की चुस्त कुरती, घाघरा और आंचल की जगह साड़ी, आधी बांह का ब्लाउज, बिंदी, टिकुली और नाक-कान-गला-कलाई में गहने धारणकर स्त्री भेष में पुरुषों को भोजपुरी मंच पर सर्वप्रथम भिखारी ने ही उतारा। यह देखकर नाक-भौं टेढ़े करते हुए कुछ लोगों ने यह भी कहा कि 'लोग फंसवलस टिकुली, चोली, सारी में।' भिखारी के नाच में पात्रों के पांवों में घुंघरू बंधे जरूर, मगर मध्यम मार्ग को अपनाते हुए। 'विदेसिया' में नौटंकी की तरह ही एक कवि सूत्रधार का विधान हुआ, जिसका निर्वाह भिखारी ठाकुर ने खुद ही बखूबी किया। इस तरह से भिखारी के इन तमाशों को 'नाच' कहा गया जिसके माध्यम से भोजपुरी में बहुत ही सहज, स्वाभाविक और अनमोल दृश्य-श्रव्य काव्य के रूप में उजागर हुए।"[५]

लोकनाटकों के माध्यम से भिखारी ने भोजपुरी क्षेत्र की जड़ता को जड़ से खत्म करने की दिशा में जो अविस्मरणीय भूमिका निभाई, उसके लिए वह सदा

याद किये जाते रहेंगे। उन्होंने औरतों को परदे से बाहर आने के लिए प्रेरित किया और खुली आंखों से समाज को देखने की दृष्टि दी। महिलाओं पर होने वाले अत्याचार, अंधेरगर्दी के विरुद्ध उन्होंने जेहाद छेड़ रखा था। छोटी उम्र में बच्ची की शादी, बूढ़े के साथ युवती का पाणिग्रहण, विधवा के साथ अमानुषिक सलूक जैसे ज्वलंत मुद्दों पर ही नहीं, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर भी उन्होंने जमकर सार्थक ढंग से चोट की और लोकनाटकों की एक नयी लीक बनाई। इस महत्वपूर्ण अवदान के कारण ही महापंडित राहुलजी ने उन्हें 'भोजपुरी का शेक्सपियर' और जगदीश चन्द्र माथुर ने भरत मुनि की परम्परा का (प्रथम) लोकनाटककार कहा। मगर समीक्षक राम निहाल गुंजन का मत इनसे भिन्न है। उनका मानना है—'भिखारी ठाकुर को भोजपुरी का शेक्सपियर कहा जाता है, लेकिन मैं समझता हूँ कि भिखारी अपने रूढ़िमुक्त और प्रगतिशील सामाजिक दृष्टिकोण के चलते भारतेन्दु के ज्यादा करीब थे, इसलिए उन्हें 'भोजपुरी का भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। इसी अर्थ में उनका उचित मूल्यांकन भी करना सम्भव होगा।'' ६

संदर्भ

१. जनकवि भिखारी ठाकुर : भूमिका; पृष्ठ ख, ग

२. नवभारत टाइम्स (पटना) : १८ दिसंबर, १९९४, पृष्ठ ७

३. अभ्यंतर (लखनऊ) : भिखारी ठाकुर के लोकनाटक : पृष्ठ २३

४. भिखारी : टिकुली-चोली-साड़ी में : पृष्ठ १२८

५. भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका : जनवरी १९८४ ; पृष्ठ ७० से अनूदित

६. अभ्यंतर : जनवरी-मार्च १९८८; पृष्ठ २४

जनकवि का सन्त-हृदय

कविता आखिर है क्या? काव्य के संदर्भ में समकालीन चर्चित कवि डॉ० केदार नाथ सिंह की निम्न पंक्तियां उल्लेखनीय हैं :

कविता क्या है?
हाथ की तरफ उठा हुआ हाथ
देह की तरफ झुकी हुई आत्मा
मृत्यु की तरफ घूरती हुई आंखें
क्या है कविता?
कोई हमला हमले के बाद
पैरों को खोजते लहूलुहान जूते
नायक की चुप्पी
विदूषक की चीख
बालों के गिरने पर नाई की चिन्ता
एक पत्ती के टूटने पर राष्ट्र का शोक
आखिर क्या है
क्या है कविता...?

अपने समय की संवेदना को सशक्त और सार्थक अभिव्यक्ति देने वाले आज के हर कवि का यही सवाल है।

जहां गद्य चूक जाता है, वहीं कविता जन्म लेती है। चूंकि कविता अनुभूति एवं मानवीय संवेदना जैसे अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों को जीवंत-सार्थक अभिव्यक्ति देने का एक सशक्त जरिया है और कविता चूंकि संकेत की भाषा है, अतः वह गद्य की अपेक्षा ज्यादा सामर्थ्यवान है। कवि को शब्दों के अर्थ का मोह छोड़कर बिम्ब और प्रतीकों की मदद से संकेतों का आश्रय लेना पड़ता है और ये संकेत गूंगे के गुड़ की तरह अपना प्रभाव छोड़ते हैं। कविता का सीधा सम्बन्ध मनुष्य के हृदय से है और आज चूंकि मानव हृदयहीन होता जा रहा है, अतः वर्तमान परिवेश में कविता की उपादेयता और भी बढ़ जाती है। और यदि कविता किसी लोकभाषा

में लिखी जा रही हो, तब तो उसके प्रभाव के विषय में कहना ही क्या! यदि कविता सच्चे मन से फूटती है तो वह सीधे पाठक के हृदय में जा उतरती है।

भिखारी ठाकुर का काव्य इसी कोटि में आता है जो हृदय से निकलकर सीधे हृदय में जा पैठता है। चूंकि उनके गीत दृश्य भी हैं और श्रव्य भी, अतः उनकी प्रभावोत्पादकता दोहरी होती है। ये गीत अभिनेय हैं और संगीतात्मकता से ओत-प्रोत। लोक-जीवन में बहुप्रचलित धुनों पर आधारित होने के कारण भिखारी के गीत मानसपटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं और उनकी तर्जे-दयानी देखते ही बनती है।

भिखारी ठाकुर सही मायने में जनता के कवि हैं। मूलतः वह कवि ही हैं और नाटककार बाद में। नाटकों में भी उनका कवि ही भारी पड़ता है। आशुकवित्व के गुण तो उनमें कूट-कूटकर भरे हुए हैं। यही वजह है कि उनके गीत सायास और रियाज करके नहीं, बल्कि अनायास ही फूटते चले गये और तीस वर्ष की आयु से निधन के पूर्व तक उनका कवि जन-जन को झंकृत-चमत्कृत करता रहा। भिखारी ठाकुर भी इसे चमत्कार ही मानते हैं—किसी दैवी शक्ति का चमत्कार, मातृभाषा की शक्ति का चमत्कार!

तीस बरिस के मइल उमिरिया, तब लागल जिउ तरसे,
कहीं से गीत, कवित्त कहीं से लागल अपने बरसे।

और बारिश भी कोई मामूली नहीं। बिना बादलों की मूसलाधार बरसात। रेत की दीवार। 'वन मैन आर्मी' की विजय। बगैर पेड़ के फल का स्वाद। कैसा अद्‌भुत रहस्य है! मगर ऐसी बात नहीं कि बबूल के गाछ के नीचे संयोग से आम मिल गया हो उन्हें। यह तो उनकी मातृभाषा भोजपुरी की अकूत क्षमता का परिचारक है।

बिना बिरिछ के लागल फल। घटा न लउकल, बरिसल जल।
जइसे बिना फउज के जीत। नजर परे बालू के भीत।
तसहीं करनी बाटे मोर। मातृभासा के ह ई निचोर।

भिखारी के स्वर-माधुर्य में अजीब कसक थी और था लोक तर्जों पर पूरा अधिकार। अतः उन्होंने आम जनता की धुनों पर जनता के गीत गाये। यह सही है कि हर गेय रचना गीत नहीं हुआ करती, मगर सभी गीत गेय अवश्य होते हैं। मगर भिखारी ने जो कुछ भी गाया, वे सारे-के-सारे गीत ही हैं। ऐसे

गीत जो दिल की अतल गहराई में घुसकर देर तक बजते रहते हैं। जब भी भिखारी के अंतर्मन की पीड़ा घनीभूत हुई, गीत की रचना हुई। जब भी समाज में ऐसा कुछ घटा, जिसने भिखारी को व्यथित कर दिया और उनकी आत्मा ने उन्हें झकझोर कर रख दिया तो गीत रचे गये। उनके गीत कपोल कल्पना की उपज कतई नहीं थे। अनुभव जनित और समाज-घटित उन गीतों का गहरा जुड़ाव विश्वसनीय यथार्थ से था। यही वजह है कि सामाजिक विसंगतियों की अभिव्यक्ति में गीतों के तेवर तल्ख हो गये हैं।

जिस प्रकार भिखारी अपने नाटक को 'तमाशा' कहा करते थे, वैसे ही उन्होंने गीतों को 'गाना' कहा। उन्होंने उसी गाने को सार्थक बताया जिसमें मालिक (परमात्मा) का नाम हो। यानी, जिस गीत में किसी-न-किसी रूप में ईश्वर की उपस्थिति नहीं, वह गीत नहीं और जिस तमाशे में धर्म की चर्चा नहीं, वह तमाशा नहीं। मगर उनका ईश्वर और धर्म उनका ईमानदार मन और सत्कर्म ही था। फलतः उन्होंने अपने साहित्य में सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की स्थापना की।

भिखारी ठाकर ने जनकवि कहलाने की खातिर न तो किसी 'वाद' का सहारा लिया, न ही राजनीति की शरण ली। उन्होंने जो कुछ भी लिखा, दबे-कुचले निम्न वर्ग की तंगहाली-बदहाली का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके लिखा। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके गीत गरीब, मजदूर, किसान के हर्ष-विषाद, सुख-दुःख का आईना बन गये और उस उपेक्षित-प्रताड़ित तबके ने भिखारी को अपना मसीहा मान लिया। भिखारी के ही शब्दों में :

नाम भइल बा बहुत दूर ले, नाच के लवारी में,
केहू जपत बा गाय चरावत, केहू जपत बनिहारी में,
केहू जपत बा आम गाछ पर, केहू जपत बंसवारी में,
केहू जपत जा परिहथ बइले, जोतत खेत बधारी में,
केहू जपत बा, लोग फंसवलसि, टिकुली-चोली-सारी में,
केहू जपत बा, दरसन कइलीं, पाप गइल धोनसारी में।

भिखारी ठाकुर सही अर्थों में संत थे। उन्होंने धर्म-मजहब के नाम पर न तो धर्मान्धता व साम्प्रदायिकता को तरजीह दी, न ईश-भक्ति के नाम पर कर्त्तव्यपथ से विचलित अथवा विमुख होने को कहा। संत का कर्त्तव्य होता है—'सार-सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय'। भिखारी ने भी सदा सार तत्वों को ही पकड़ा।

उन्होंने न तो घर-बार छोड़कर संन्यास लिया, न गृहस्थ जीवन से पलायन करने वाले पुजारी-पाखंडियों की तरह किसी मन्दिर-मठ की शरण ली। जीवन से भागे हुए कायर लोग भला समाज को क्या दे पाएंगे! गृहस्थजीवन में रमे भिखारी साधुता की कसौटी पर हर तरह से खरे उतरने वाले आदर्श संत थे। यही कारण था कि उनका काव्य आध्यात्मिक-सांस्कृतिक सौन्दर्यबोध और लोकमंगल से ओत-प्रोत था। वह सामाजिक बुराइयों, अंधविश्वास, रूढ़ियों का विरोध पूरी अक्खड़ता के साथ करते हैं, पर कहीं भी शिष्टता, मर्यादा पर तनिक भी आंच नहीं आने देते।

भिखारी के गीतों में संवेदना की सूक्ष्म पकड़ तो है ही, मन को बांधने और बेधने की भी विलक्षण क्षमता है। डॉ० उषा वर्मा का तो यहां तक मानना है कि कहीं-कहीं जनकवि भिखारी गोस्वामी तुलसीदास से भी आगे निकल गए हैं। वह कहती हैं—"भिखारी जनमानस तक जितनी आसानी से और जितनी गहराई तक पहुंचे, तुलसी को छोड़कर कोई दूसरा न पहुंच सका। तुलसी-भक्त विद्वान अगर माफ कर दें तो दबी जुबान से यह कहा जा सकता है कि कहीं-कहीं भिखारी तुलसी से भी आगे निकल गए हैं। यह सही है कि उनके पास तुलसी का पांडित्य नहीं है। हो भी नहीं सकता। कहां गंवई गंवार, कहां पढ़े-लिखे पंडित। लेकिन जहां तक सहज ही अर्थबोध कराकर सराबोर कर देने का सवाल है, भिखारी का लोहा मानने से इनकार करने की कोई गुंजाइश नहीं है।" १

सचमुच, भिखारी ने तुलसी की भांति नाना पुराणों का पारायण तो नहीं किया था, पर उनके पास सोच की मौलिकता और अनुभव-अनुभूति का जीवंत अक्षय भंडार जरूर था, जिसकी बदौलत वह न सिर्फ जनता के जीवन के कुशल चितेरे साबित हुए, बल्कि जनता के ही होकर रह गए।

नाम भिखारी, काम भिखारी, रूप भिखारी मोर।

हाट, पलानि, मकान भिखारी, चहुं दिसि भइल सोर।

भिखारी का काव्य एक में अनेकता का परिचायक है। अतः उनकी तुलना किसी एक कवि से नहीं की जा सकती। वह एक साथ ही तुलसी, सूर, कबीर, मीरा, जायसी और रसखान थे। इस विषय में महेश्वराचार्य का मत गौरतलब है—"जितनी भी प्रचलित लोकभाषाएं हैं और उनके रचनाकार हैं, उनमें भिखारी किसी से हीन नहीं हैं। काव्य क्षेत्र में भिखारी की तुलना किसी एक कवि से नहीं की जा सकती। भिखारी बीसवीं शताब्दी के कवि तथा कलाकार थे, मगर उनके

ऊपर भक्तिकाल के हिन्दी कवियों की छाप है। शैली सूर-सी गीतिमय है। भाव-क्षेत्र तुलसी-सा व्यापक है। वेदना की गहराई कबीर-सी है। भाषा जायसी-सी सरस है। अतः भक्तिकाल के प्रमुख सभी कवियों का सामंजस्य भिखारी में है। गुप्तजी की भाषा में भिखारी को 'अकिंचन की खिचड़ी' कहा जा सकता है। मगर भिखारी कोरे कवि अथवा रंगकर्मी ही नहीं थे। भिखारी के प्रत्येक वाक्य पर कर्त्तव्य की कठोर मुहर लगी हुई है। जैसे संतवर कबीरदास जी हैं, कुछ वैसे ही भिखारी भी दीख पड़ते हैं। संतों में कबीर का स्थान सबसे ऊंचा लगता है। कबीर दिन भर कपड़ा तैयार करते थे। शाम को ले जाकर उसे बेचते थे। इस प्रकार जो कुछ पैसे उन्हें प्राप्त होते थे, उसी से उनका जीवन-निर्वाह होता था। उनका सिद्धान्त भी था—"मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय'। ऐसा कठोर-कर्मठ संत ब्रह्मज्ञान में सबसे आगे था। अक्षर लिखने तक की कबीर को जनकारी नहीं थी। मगर जो कुछ भी उन्होंने लिख दिया है, किसी युग या किसी काल में उसे काटा नहीं जा सकता। कबीर की सारी बातें अकाट्य हैं। उधर भक्त रैदास भी जूते की सिलाई करके अपने जीवन का निर्वाह करते थे। गंगाजी का दिया हुआ सोने का कंगन तक उनके लिए तुच्छ था। कहने का मतलब कि भिखारी ने जीने-खाने के लिए नाटक-मंडली का गठन कर लिया था, मगर नाटक के झूठे अभिनय में ही वह बंधे नहीं थे, रंगे नहीं थे। रंगकर्मी होकर भी वह सच्चे भक्त थे। भक्ति करते हुए भी वह कर्त्तव्य-परायण थे, कर्मनिष्ठ थे। भिखारी इस प्रकार का उपदेश कहीं नहीं देते थे कि लोग नाच-तमाशा के दीवाने बन जायं वरन उनकी एक-एक पंक्ति में कर्मठता की ही ध्वनि भरी हुई थी।"[२]

भिखारी के काव्य में भाव पक्ष और कलापक्ष का अद्भुत समन्वय हुआ है। दोनों पक्ष एक-दूसरे के पूरक हैं। डॉ० उषा वर्मा ने भिखारी के काव्य की इस विशेषताएं रेखांकित की हैं :

एक- भिखारी के गीत हमेशा कथा और प्रसंग से जुड़कर चलते हैं। कथा को आगे बढ़ाने में सहयोग देते हैं। परिस्थिति को सजीव बनाते हैं। कहीं बेकार नहीं लगते।

दो- भिखारी के गीत उनके बंधुआ मजदूर हैं। उनसे जो चाहते हैं, करा लेते हैं। चाहे समाज की किसी बुराई पर चोट करनी हो, चाहे व्यक्ति विशेष के चरित्र या रूप को उकेरना हो, परिस्थिति-विशेष का चित्र खींचना हो अथवा दर्शन के किसी रस में डुबोना हो, उनके गीत हर काम में हमेशा अपनी भरपूर ताकत से तैयार रहते हैं।

तीन- भिखारी के गीत प्रसाद गुण-सम्पन्न हैं। इस हद तक कि यह कहना कठिन है कि उनके गीत से पहले अर्थ-बोध होता है अथवा रसबोध। तुलसीदास को इसी अनिर्णय की स्थिति में कहना पड़ा :

बानासन ते सवरे, बान विषम रघुनाथ।
दस सिर सिर धर तें धुरे, दोऊ एकहि साथ।।

भिखारी के गीतों में प्रसाद गुण की स्थिति कुछ ऐसी ही है।

चार- साधारणीकरण की क्षमता में भिखारी के गीतों का कोई सानी नहीं है। अब उनके गीत जन-जन के गीत हैं। अता-पता नहीं चलता कि कैसे उनके गीत लोगों की जुबान पर चढ़कर रोजमर्रा के जीवन के अंग बन जाते हैं। भिखारी खुद चकित हैं—"नांव 'मइल बा बहुत दूर ले नाच के लबारी में, केहू जपत बा गाय चरावत, केहू जपत बनिहारी में"...

पाँच- करुणा भिखारी का अपना खास क्षेत्र है। शेली ने कहा था कि हमारे सबसे मीठे गीत वे हैं जो हमारे सबसे करुण विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। वाल्मीकि के कवि होने के मूल में मन की करुणा का उद्रेक ही था :

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा,
यत्क्रौंचमिथुनादेकं अवधीः काम मोहितम्।

कवि पंत भी करुणा के हिमायती हैं—'वियोगी होगा पहला कवि।' लेकिन भिखारी की करुणा का रंग कुछ ज्यादा ही चोखा है। उनकी करुणा प्रसाद गुण की चादर में लिपटकर इतनी पारदर्शी और सहज-सुलभ हो गयी है कि कभी-कभी तो भाषा की सीमा पर ही शक होता है और ऐसा लगता है कि अनुभूति और परिस्थिति की कोई भंगिमा ऐसी नहीं है, जो भाषा की पकड़ में न आ सके। जिस सहजता से भिखारी करुणा का उद्रेक कर देते हैं,, कोई दूसरा नहीं कर सकता। 'विदेसिया', 'भाई विरोध', 'बेटी वियोग', 'पुत्र वध' आदि नाटकों में करुण रस से भरपूर गीतों की भरमार है।

छह- हास्य में भी भिखारी पीछे नहीं हैं। 'बेटी वियोग' में करुणा के पहले के हास्य देखने लायक हैं। उस हास्य से एक ही साथ तीन लक्ष्य की सिद्धि होती है—दर्शक हंस लेते हैं, दूल्हा की रूपरेखा सजीव हो जाती है, दर्शक भावी करुण प्रसंग वास्ते तैयार हो जाते हैं।

सात- अरस्तू ने कहा था कि नाटक का एक बहुत बड़ा उद्देश्य रेचन है।

आदमी के मन में जो घुटन होती है, उसे किसी तरह कह-सुन-देख लेने से मन शांत हो जाता है। यही रेचन है। भिखारी के गीतों में रेचन की खूब गुंजाइश है—कहीं-कहीं इतनी कि 'शालीन' कहलाने वाले लोग संकते में पड़ जाते हैं।

आठ- भिखारी के राधेश्याम संबंधी गीत से सूरदास के साथ-साथ रीतिकाल की याद भी ताजा हो जाती है। अपने सीता-राम संबंधी गीत से वह तुलसी के सामने खड़े हो जाते हैं।

नौ- भिखारी के प्रायः सभी गीत सोद्देश्य हैं। गीत के जरिये तत्कालीन समाज की बुराइयों पर चोट करने की कला में भिखारी माहिर हैं। इस अर्थ में उन्होंने काम तो कबीर की तरह किया, लेकिन अपनी खास भाषा-शैली रखी। लोकगीत की मिठास में लपेटकर बगैर किसी की भावना को ठेस पहुंचाए उन्होंने एक से बढ़कर एक प्रहार किया।

दस- भिखारी के सभी गीत लोकगीतों की तर्ज पर हैं। लोकगीतों से आदमी का एक संस्कार लिपटा रहता है। इसलिए उसकी पहुंच मन में बहुत गहराई तक हो जाती है। आजकल हिन्दी गीत लोकगीतों की तरफ ललचकर देखते हैं तो कोइ अचरज की बात नहीं है। परिनिष्ठित कला जब-जब कमजोरी महसूस करती है, लोककला से उधार लेती है। भिखारी के लोकगीत से उधार लेकर हिन्दी गीत अपने आप को तरोताजा बना सकता है।[३]

भिखारी के काव्य की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह जनजीवन की विकट समस्याओं और त्रासदियों से बहुत गहरे जुड़ा हुआ है। चाहे बाढ़ की कुदरती विभीषिका हो या सूखे की, भिखारी के गीत हमें संवेदित किये बगैर नहीं रहते। बाढ़ में फंसे लोग-बाग नाव वाले को यूं पुकारते हैं जैसे अनेक द्रौपदियां कृष्ण को गुहार लगा रही हों। बछड़ों के पीछे बहती हुई गायें, बक्सों में बहते रुपये-पैसे-गहने, भूख से तड़पते नर-नारी, ऐसी बेबसी कि कोई उपाय सूझता ही नहीं। ऐसी स्थिति में पाल तनी नाव की छाजन पर बैठा मल्लाह श्रीकृष्ण-सा प्रतीत होता है और सभी गुहार लगाते हुए कहते हैं :

हमारा के चढ़ा लऽ हो भइया!
छान्ह पर नाहंवार करे बाप-मइया। बाकस में बह गइल गहना-रुपइया।
बाछा के पाछा से दहि गइल गइया। एह घरी एको न लउकत उपइया।

तन बिना अन्न के बा होखत दोहइया। कहां के हऽपाल तानल जात बाटे नइया।

कहत भिखारी आइल दुख के समइया। एह जून बचालऽ होके बृज के कन्हइया।।

भिखारी के प्रकृति-चित्रण में भी दीन-दुखियों की दीनता हृदय को छुए बगैर नहीं रहती। भोजपुरी क्षेत्र में मक्के की खेती बहुतायत में की जाती रही है। भले ही मकई से खून सूख जाता हो, पर उसके गुणों की बखान भिखारी चटखारे ले-लेकर करते हैं। भुट्टा, भूंजा, सत्तू, भात, दारा आदि अनेक गुणों की जीवंत झांकी पेश करते हुए भिखारी मक्के के गुणों की माला ही गूंथने लगते हैं :

मकइया हो, तोर गुन गूंथब माला।
भात से तरत भव, लावत गरीब लव, पूरा-पूरा पानी दिआला।
भूंजा भरि झोरी-झोरी, जहां-तहां खोरी-खोरी, खात बाड़न बाल गोपाला।।
धन ह धनहरा-ढाठा, खात लगहर-नाठा, लेंढ़ा घोनसारी में झोंकाला,
सातू-मिरचाई-नून, खइला से सूखेला खून, साधू लेखा रूप बनि जाला।
दारा-गुर-दही मन, कहि-कहि कृस्न-कृस्न, मुंहवां में माजा बुझाला।
भुट्टा भगवान से विमान खास आइ जात, मन बैकुंठ चलि जाला।
करत भिखारी खेला, जइहन मलेछू मेला, गंगा तीरे बहुते बोआला।।

भिखारी के काव्य में करुणा पराकाष्ठा पर जा पहुंची है। वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति से रोम-रोम सिहर-सिहर उठता है और आंखों से आंसुओं की झड़ी लग जाती है। जिस प्रकार धोबी का कुत्ता न तो घर का होता है, न घाट का ही, उसी प्रकार विधवा स्त्री का स्थान न तो ससुराल में है, न ही मायके में। तिस पर भी सामाजिक उपेक्षा और प्रताड़ना। गहना-गुरिया, धन-दौलत —सब कुछ सौंप देने के बावजूद उसे जीवनदान नहीं मिलता। अपने भतीजे को संबोधित विधवा काकी का विलाप द्रष्टव्य है :

कवन कसूर कइलीं, घर से निकालल गइलीं
छूटल जात बा नइहर-ससुरवा हो बबुआ!
परपति साथ रति, कबहूँ ना भइल मति
धनवा करनवां तेयागऽ मत हो बबुआ!
बबुआ समुझऽ मन, तोहरे हऽ सब धन
काकी करिहन जुठवा के आसरा हो बबुआ!

दिन-रात दूनो साम, घरवा के करबि काम
लुगरी फींचबि हम पतोह के हो बबुआ!
तोहरा मन में परल सक, भइल बानी हम भक
किरियो खिया लऽ काली माई के हो बबुआ!
हम करबि दुख भोग, तोहरा के हंसी लोग
घात मत करऽ मुसमात से हो बबुआ!
करऽ मत दोसर फेल, अंगुठा के टीप लेलऽ
देत बानीं धन, खुशी मन से हो बबुआ!
कइले बाड़ऽ सान सेखी, विधवा के दुख देखि
दया नइखे लागत अभागत के हो बबुआ!
बात मुंह देखल भइल, धरम धसि पताल गइल
पापवा से होत भुइकंपवा हो बबुआ!
आज रहितन सामी मोर, केकरो न लागित जोर
गतर पर के गहना न, छोड़लऽ हो बबुआ!
झूठो लागल लंद-फंद, देख दुख सुखकंद
करिहन विचार नंद जसोदा के हो बबुआ!
कहत भिखारी नाई, विधवा विलाप गाइ
भजऽ रघुराई, जीवदान छोड़ि दऽ बबुआ!

उपर्युक्त 'विधवा-विलाप' में 'भजऽ रघुराई' की सीख और बाढ़ की विभीषिका के चित्रण में 'बृज के कन्हैया' की गुहार आकस्मिक नहीं है। यह ध्रुव सत्य है कि जब व्यक्ति हर तरह से बेसहारा हो जाता है तो उसे 'एक भरोसो, एक बल, एक आस-विश्वास' ईश्वरीय शक्ति का ही स्मरण हो आता है।

भिखारी सही मायने में एक संत कवि हैं और उनके काव्य में लौकिक भक्ति के दर्शन होते हैं। राम और कृष्ण उनके आराध्य हैं। साथ ही, शिव, काली, गंगा की स्तुति भी उन्होंने की है। मंगलाचरण में उन्होंने देवी-देवताओं की आराधना दैन्य भाव से की है। महेश्वराचार्य से तो उन्होंने यह भी बताया था कि उन्हें मां गंगा के साक्षात् दर्शन भी हुए थे।

भिखारी अपने गीतों में बिम्ब, प्रतीक और उपमाएं कपोल कल्पना के आधार पर कहीं से उधार नहीं लेते, बल्कि अपने चिर-परिचित परिवेश से ही वह विश्वसनीय चित्र उकेरते हैं। भिखारी के कार्यक्रम विभिन्न गांवों में शामियानों में ही आयोजित होते थे। एक जगह तो उन्होंने रामचन्द्र की आंखों की उपमा शामियाने से दी है। पत्तियों, फूल, फल से लदे सघन गाछों के बीच तने हुए शामियाने। उस शामियाने जैसे ही हैं राम के रतनारे नयन। कमल, आम की फांक, मृग की आंखों से नयन की तुलना तो कइयों ने की है, मगर संभवतः पहली बार भिखारी ने नयनों को शामियाने सदृश बतलाया है। राम-सीता के सौन्दर्य के साथ ही उनकी माताओं के भी सौन्दर्य की झांकी देखें :

रामजी के हो रतनार बाटे नैना।

फल-फूल-पत्र सघन गछियन के, जइसे तनाइल सभैना।

जस रघुवर तस नख-सिख सीता, तस रानी कोसिला-सुनैना।।

इसी प्रकार, कवि ने प्रसाद गुण और माधुर्य से लैस सिर्फ एक पद में ही अपने आराध्य देव शिव की प्रवृत्ति, प्रकृति, स्वरूप और शिव विवाह की समवेत झांकी प्रस्तुत कर दी है। महज एक छोटे से पद में ही इन सबका चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।

हरदम बोलऽ सिव बम-बम-बम-बम!

कर त्रिसूल बसहा पर संकर, डमरू बजत बा डम-डम-डम-डम।

मुंह में पान न, भांग चबावत, दसन विराजत बा चम-चम-चम-चम।

पुरवासी निरखन वर लागे, नारी-पुरुष सब खम-खम-खम-खम।

नाई भिखारी कहबि कब तक ले? जब तक रही तन दम-दम-दम-दम।।

भोजन-शयन और ऐशो-आराम करते तो पूरी रात गुजर गयी। ऐसे जीवन में भला कब प्रभात आएगा? मन-सुगना को पढ़ाने की गरज से कवि चेताता हुआ कहता है कि आखिर कब तक लुकते-छिपते रहोगे जिन्दगी से?

राम-राम बोलऽ, बिहान भइल तोता!

भोजन-सयन करत निसि बीतल, कब ले लुकइबऽ अलोता?

भिखारी के कृष्ण 'छैल लिकनिया' (मनचले युवक) हैं जो 'अबाटी' (शरारती) तो हैं ही, गोपियों के साथ 'बरजोरी' करने से भी बाज नहीं आते। एक तरफ

वह 'मीठबोलिया' (मृदुभाषी) हैं तो दूसरी ओर मुंहजोर भी। एक पद में घड़ा फूटने के बहाने शरीर की नश्वरता की ओर संकेत किया गया है और भिखारी ने इस रचना में अपने निधन की भी भविष्यवाणी कर दी थी। वह दिन शनिवार ही था, जिस रोज उनका प्राणान्त हुआ था और गांव में हजारों की तादाद में लोगों का जमघट लग गया था।

पनिघट पर गगरी फोरलन मोर। पनिघट पर...

जसोदा के बेटा मोहन मीठ बोलिया,

भइलन नगर में चोर। मोर पनिघट पर...

अइसन कइलन, केहू न पतियाई,

हाथ बांहि झकझोर। मोर पनिघट पर...

गगरी फूटल त दोसर किनाई,

लागल इज्जत के ओर। मोर पनिघट पर....

कहत भिखारी सनीचर के दिन होई,

सउंसे गांव के बटोर। मोर पनिघट पर...

गीतों में कवि ने अपनी आन्तरिक पीड़ा को भी सार्थक अभिव्यक्ति दी है। वह आत्मा और परमात्मा के द्वंद्व को खत्म करना चाहता है। इसीलिए उसने 'करत बाटे मन जे अकेले बतिअइतीं' और 'कहत भिखारी परदा खोल' के माध्यम से इस ओर इशारा किया है। भिखारी हरिकीर्तन, भिखारी भजन माला, राम नाम माला, नव अवतार, गंगा-स्नान, राधेश्याम बहार, यशोदा-सखी संवाद आदि के द्वारा भिखारी के संत कवि होने की ही पुष्टि होती है। वह ऐसे धार्मिक-सांस्कृतिक जागरण के हिमायती हैं, जिसमें हिन्दू-मुस्लिम आदि का विभेद न हो। अध्यात्म, संस्कृति को लोकमंगल की भावना से प्रौढ़ता प्रदान करना उनका उद्देश्य है। भोग-विलास और भौतिकता की चकाचौंध में फंसे जनमानस को संवेदित कर सत्कर्म और नैतिक मूल्यों की ओर मोड़ना उनके काव्य का मकसद है। ऐसी रचनात्मक पहल करने वाला कोई संत अथवा समाज सुधारक ही हो सकता है।

भिखारी ने भक्तिकालीन कवियों—कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, जायसी, रसखान आदि—से अनजाने में ही प्रेरणा ली और उन सबकी खासियतों को अपने लोक काव्य का विषय बनाकर सबको चमत्कृत कर दिया। यही वजह है कि भिखारी के काव्य का भावपक्ष तुलसी जैसा ही व्यापक और प्रबल है, पर उसमें दर्द की

टीस कबीर और मीरा जैसी ही गहरी है, भाषा जायसी-रसखान-सी सरल-सरस है और शैली की गीतिमयता सूर जैसी है। संक्षिप्ततः, भक्तिकालीन सभी कवियों की बहुआयामी विशिष्टताएं भिखारी के गीतों में समाहित हैं जो लोकधुनों पर सार्थक ढंग से अभिव्यक्त होकर जनता की भाषा में, जनता के मुहावरों-अलंकारों और रसों से लैस हो आज भी जनता के होकर रह गये हैं। जनता के हृदय में आज भी उन गीतों का निरंतर बजते रहना ही जनकवि भिखारी और उनके जनकाव्य की प्रासंगिकता है।

संदर्भ

१. भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका : दिसंबर १९८७, पृष्ठ ३३

२. भिखारी : महेश्वराचार्य : पृष्ठ १३३

३. भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका : भिखारी ठाकुर जन्मशती विशेषांक; पृष्ठ ३४, ३५, ३६ से अनूदित।

भिखारी और उनकी नृत्यमंडली

नाच मंडली के धरि साथा। लेक्चर दीं कहिके रघुनाथा।।
बरजत रहलन बाप-मतारी। नाच में तू मति रहऽ भिखारी।।
चुपे भागि के नाच में जाईं। बात बना के दाम कमाईं।।
केहू सराहे, केहू दूसे। केहू कहे 'जमाव अबहूं से'।।
तनिक न आवे गावे-बजावे। काहे दो लागल लोग के भावे।।

भिखारी ठाकुर को सम्पूर्ण उत्तर भारत में लोक कलाकार के रूप में जो अभूतपूर्व सामाजिक मान्यता मिली, वह विलक्षण थी। उन्होंने स्वयं स्वीकारा है कि मां-बाप की लाख मनाही के बावजूद उन्होंने नृत्य मंडली का गठन कर लिया था और लुक-छिपकर धन कमाने की गरज से ईश्वर का नाम ले 'लेक्चर देने' और 'बात बनाने' की कला में महारत हासिल कर ली थी। बहुतों ने सराहा तो कुछेक ने कोसा भी। किसी ने फिर से जमने और जमाने की भी सलाह दी। कहने का मतलब यह कि भिखारी की लोकप्रियता जंगल की आग-सी दिन दूनी, रात चौगुनी फैलती और पसरती ही चली गयी।

भिखारी ठाकुर जन्मजात कवि थे और होश संभालते ही गाय चराते हुए उन्हें आशु कवित्व व तुकबंदी की कला आ गयी थी। उस वक्त विभिन्न मंचों पर सर्वाधिक प्रचलित यात्रा, रामलीला, रासलीला और नौटंकी से उन्होंने प्रेरणा ली, रामचरित मानस का अवगाहन किया तथा सभी पारम्परिक शैलियों में सामंजस्य स्थापित करते हुए परम्परा व आधुनिकता के बीच एक अलग ही लीक बनायी। वही शैली 'विदेसिया शैली' के रूप में ख्याति के शिखर पर पहुंची और रातों-रात भिखारी ठाकुर इस नयी लोक शैली के प्रवर्त्तक के रूप में प्रसिद्ध हो गए।

उन दिनों भोजपुरी क्षेत्र में नाटक की परम्परा थी ही नहीं। ले-देकर नटुआ का नाच, धोबी-नाच, भांड़ का नाच, जोगीड़ा और नौटंकी का प्रचलन था। भिखारी ने ही इस क्षेत्र में सर्वप्रथम लोकनाटक की शुरुआत की, पर पूर्व प्रचलित नाच की तर्ज पर इसे भी 'विदेसिया का नाच' ही कहा जाने लगा।

भिखारी ने ताम-झाम से अपने आप को और नृत्य मंडली को सर्वथा अलग रखा। गांवों में खुले आसमान के नीचे अथवा मैदान-बगीचे में शामियाने तले

चौकी बिछाकर मंच का निर्माण किया जाता था। ढोलक, सारंगी, हारमोनियम, झाल, कठताल और जोड़ी आदि साज-बाज के साथ सभी कलाकार मंच पर ही मौजूद रहते थे। जिस पात्र की जो भूमिका होती थी, वह तत्काल उठकर अभिनय करने लगता था। हल्के-फुल्के मेकअप का काम भी मंच पर ही हो जाया करता था। सारे पात्र नाच-गान में पारंगत हुआ करते थे।

भिखारी के नाटकों में गीतों की प्रधानता होती थी। सभी गीत लोकधुनों पर आधारित होते थे और भिखारी उन गीतों को कलाकारों से कंठस्थ करा लेते थे। नाटक के गद्य-भाग को भिखारी, सहयोगी कलाकारों को इस तरह समझाते थे कि फिर उन्हें दोबारा बतलाने की जरूरत नहीं होती थी। अतः अपनी पुस्तिकाओं में भिखारी ने नाटक के सिर्फ पद्य-भाग को ही छपवाना आवश्यक समझा था। उनके सभी सहयोगी कलाकार मंजे हुए होते थे। ध्रुपद के सुप्रसिद्ध गवैया थे महेन्द्र और हास्य रसावतार थे राम लछन, जूठन। वादकों में सुपरिचित नाम थे—घिनावन, तफजूल, अलीजान और जगदेव। भिखारी ने उन सबका परिचय कराते हुए स्वयं लिखा था:

बाबूलाल छांटत बाल, मेदहूं के जानत हाल,
ओसहीं महेन्द्र कुछ ध्रुपद के गवैया हवे।
अजब रंग-ढंग वा घिनावन के ढोलक में,
तरह-तरह ताल के तफजूल बजवैया हवे।
सारंगी सरगम अलीजान के लागत नीक,
हद हरमुनिया के जगदेव बजवैया हवे।
राम लछन जूठन के भिखारी बताय देत,
खास-खास हास रस नकल के करवैया हवे।

उन दिनों गांवों में पर्दा-प्रथा का प्रचलन था। अतः पुरुष शासित समाज में स्त्रियों का मर्दों के साथ नाच देखना वर्जित था। ऐसी स्थिति में यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि मंच पर कोई महिला नारी-पात्र की भूमिका अभिनीत करे। भिखारी ने ही सबसे पहले कलात्मक प्रतिभा वाले युवा पुरुषों को स्त्रियोचित वेशभूषा में मंच पर उतारा और 'लौंडे के नाच' का प्रचलन किया। उन्होंने साड़ी, ब्लाउज, टिकुली, गहनों आदि साज-सज्जा के साथ पुरुष नर्तकों को मंच पर उतारा जरूर, मगर मंच की मर्यादा का सदा ही ख्याल रखा और मंडली की गरिमा,

शिष्टता व शालीनता के प्रतिकूल कुछ भी नहीं होने दिया। उनके मंच का एक अनुशासन था और जब भी कोई कलाकार उस अनुशासन को तोड़ने की जुर्रत करता था, उसे तत्काल नृत्यमंडली से निकाल बाहर कर दिया जाता था। रुपये के लोभ में जब भी कोई नर्तक मंच से नीचे उतर जाता, भिखारी उसे अपनी नजरों से ही उतार देते थे। सिर्फ बाल बढ़ा लेने और स्त्रियों का पहनावा पहन लेने से ही कोई नर्तक नहीं हो जाता, जब तक उसे नृत्य की साधना और कला में महारत हासिल न हो जाये। भौतिक सुख की चकाचौंध से बाहर निकलकर वह कला व ज्ञान की साधना करने की सलाह देते और इस बात की तनिक भी परवाह नहीं करते कि कलाकारों के तितर-बितर होने से उनका 'गिरोह' टूट-बिखर जायेगा। भटके हुए कलाकार को संबोधित कर वह कहते :

बेटा होके पेन्हलऽ सारी। दाम कमाके के भइलऽ भारी।।

खीसी भगबऽ, टूटी गिरोह। एकर तनिको नइखे मोह।।

तोहरे खातिर बानीं कहत। भइल बहुत दिन जवरे रहत।।

चाहे खीस में देबऽ गारी। कहेले असले बात भिखारी।।

अब ले तनिक न सुधरल चाल। बाल बढ़ाके भइलऽ माल।।

भिखारी ने छोकरे के नाच की सार्थक ढंग से प्रस्तुति करके तो शोहरत पायी ही, दो अन्य महत्वपूर्ण पात्रों का सृजन करके भी दर्शकों का मन मोह लिया। वे दोनों पात्र हैं—सूत्रधार और विदूषक। भिखारी चूंकि एक सिद्धहस्त कवि और गायक थे और उनमें आशुकवित्व तथा अच्छे वक्ता का गुण भी विद्यमान था, अतः उन्होंने स्वयं ही सूत्रधार की भूमिका बखूबी निभाई। नाटक शुरू होने के पहले हो-हल्ला, शोर-शराबा और चीख-पुकार से माहौल गूंजता रहता। मगर ज्योंही सूत्रधार के रूप में भिखारी मंच पर खड़े होते, चारों तरफ 'पिन ड्राप साइलेन्स' छा जाता। सबकी जुबान पर चुप्पी का ताला लग जाता और कान भिखारी के वचनामृत सुनने को बेताब हो उठते। मंगलाचरण के बहाने देवी-देवताओं की स्तुति के बाद सूत्रधार अपनी काव्यमय शैली में नाटक के उद्देश्य, कथानक और पात्रों की बाबत महत्वपूर्ण बातें समझाता और अपनी विलक्षण स्वर-माधुरी से सबके मन को मोह लेता। नतीजतन, नाटक के आरम्भ से अंत तक भिखारी ठाकुर का सम्मोहन दर्शकों के मन को बांधे रखता।

दूसरी भूमिका थी विदूषक (लबार) की। नाटक के बीच-बीच में आकर

'लबार' अपने अभिनय तथा संवाद के माध्यम से हंसी की फुलझड़ियां छोड़ता रहता था। इस प्रकार, दर्शकों का मनोरंजन होता था। समाज में व्याप्त विसंगतियां, कुरीतियां भी लबार के हास्य-व्यंग्य का विषय बनती थीं। जब भी कोई कारुणिक दृश्य आने को होता था, भिखारी उसके पूर्व एक हास्य भूमिका गढ़ दिया करते थे। इस तरह से दर्शक जहां हंसते-हंसते लोटपोट हो जाते थे, वहीं आनेवाले कारुणिक दृश्य का उन्हें पूर्वाभास-सा हो जाता था और वे स्वयं को इसके लिए तैयार भी कर लेते थे। भिखारी के नाटकों में करुण रस के साथ ही हास्य रस का भी सुन्दर सामंजस्य था।

हालांकि भिखारी ने न तो भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का विद्वतापूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था, न नाट्य-निर्देशन का कोई प्रशिक्षण ही लिया था, पर अपनी मौलिक सूझ-बूझ और परम्परा को आधुनिक संदर्भों से जोड़ने की कलात्मक प्रतिभा की बदौलत उन्होंने अभूतपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया। फलतः भिखारी की 'नाच की लबारी' जन-जन की भक्ति में परिणत हो गयी। भिखारी के ही शब्दों में :

नाम भइल बा बहुत दूर ले, नाच के लबारी में,
केहू जपत बा गाय चरावत, केहू जपत बनिहारी में।
केहू जपत बा, हम ना देखलीं, ऊपर भइल बुढ़ारी में,
भोजन करत में बालक सुमिरत, भात-दाल ले थारी में,
केहू जपत बा चाउर तउलत, केहू जपत मनिहारी में,
केहू जपत बा सेम-साग में, भंटा तूरत कोड़ारी में।
केहू जपत बा आम गाछ प, केहू जपत बंसवारी में,
केहू जपत बा परिहथ धइले, जोतत खेत बघारी में,
केहू जपत बा हयदल-पयदल, मंदिर केहू अटारी में,
केहू जपत बा जतरा कइके, बइठल रेल सवारी में।
केहू जपत बा, लोग फंसलसि टिकुली-चोली-सारी में,
केहू जपत बा दरसन कइलीं, पाप गइल धोनसारी में।

फिर तो लोकनाटककार, कवि, गायक, निर्देशक, अभिनेता और कुल मिलाकर मंच की शोभा भिखारी झोंपड़ी से अट्टालिका तक और गांव से नगर-महानगर तक शोहरत की बुलंदियों पर जा पहुंचे।

नाम भिखारी, काम-भिखारी, रूप भिखारी मोर।

हाट, पलानि, मकान भिखारी, चहुँ दिसि भइल सोर।।

भिखारी की कला की व्यापकता, जन-जन में पैठ तथा उनकी नृत्यमंडली के प्रभाव की चर्चा करते हुए महेश्वराचार्य का कथन है—"भिखारी द्वारा प्रस्तुत भोजपुरी गद्य-शैली पद्य से कहीं अधिक कीमती होती थी। गद्य में उनके प्रवचन-भाषण जब चलते थे तो बीच में किसी का साहस नहीं पड़ता था कि कानाफूसी भी कर सके। वह अपनी ललित गद्य-शैली में मंत्र मुग्ध-से कर लेते थे। उस समय बड़े-बड़े लठैत और हथियार से युक्त किसी के वश में न आने वाले भोजपुरी जवान तटस्थ होकर ध्यानपूर्वक भिखारी का भाषण सुनते थे। यह उनकी पैनी मधुरवाणी का प्रताप था....। यह सही है कि भिखारी जो कुछ गद्य-पद्य लिखते थे, उसे स्टेज पर नाटक के रूप में प्रदर्शित करते थे। उनकी समस्त रचनाएं दृश्य काव्य के अंतर्गत आती हैं। नाटक करने-कराने में वह स्वयं पारंगत थे। रंगकर्म पर उनका सर्वाधिकार पुरक्षित था। वह थे—नाटक के संचालक, व्यवस्थापक और सूत्रधार! अपनी ही लिखी कृतियों की शिक्षा-दीक्षा स्वयं वह ही अपनी मंडली में देते थे। संगीत-नृत्य, गाना-बजाना, कला-कौशल, साज-सज्जा, शोभा-श्रृंगार आदि सारी बातों की पूर्णतः जानकारी उन्हें थी। यही कारण था कि दुनिया उन्हें एक नाचमंडली के प्रवर्त्तक के रूप में ही जानती थी। सच तो यह है कि विशेषतः आरा, बलिया और छपरा के क्षेत्र में भिखारी के मुकाबले में न नाच हुआ है, न है और न भविष्य में होगा ही। 'भिखारी का नाच आया है'—सुनकर सामने का रखा हुआ खाना छोड़कर चल देने वाले दर्शकों को लाखों की संख्या में देखा गया है। क्या बराबरी करेगा सिनेमा का कोई भी चित्र भिखारी के नाच के सामने? और क्या भीड़ एकत्र होगी कोई तानसेन या बैजू बावरा के संगीत पर, जब स्वयं भिखारी उतर जाते थे स्टेज पर।"[1]

कहते हैं, एक ही रात पंकज मल्लिक और भिखारी ठाकुर के कार्यक्रम पटना में सम्पन्न हुए। पंकज मल्लिक के कार्यक्रम में जहां इने-गिने लोग ही उपस्थित हुये, वहीं भिखारी के नाच में बेशुमार भीड़ उमड़ पड़ी थी। जब पंकज मल्लिक ने रेलवे स्टेशन पटना जंक्शन पर भिखारी ठाकुर से मिलकर कारण जानना चाहा तो भिखारी ने मासूमियत से कहा था—"जिस प्रकार ट्रेन के पहले और दूसरे दरजे में यात्रियों की भीड़ बहुत कम होती है, पर तीसरे दरजे में खड़े होने की जगह भी नहीं मिलती, वैसे ही आपकी ऊँची कला के पारखी इने-गिने लोग ही हैं,

जबकि मेरा तमाशा आम जनता के लिए होता है। फिर तो वहां भीड़ होना स्वाभाविक ही है। आप फर्स्ट क्लास के कलाकार हैं और मैं थर्ड क्लास का!''

भिखारी के उत्तर में एक तरफ जहां उनका बड़प्पन जाहिर होता है, वहीं दूसरी तरफ इस ज्वलंत सच्चाई का भी सबूत मिलता है कि उनका लेखन, प्रदर्शन और सम्पूर्ण जीवन ही आम जनता को समर्पित था।

कुछ लोगों का आरोप है कि भिखारी के नाच ने युवा पीढ़ी को दिग्भ्रमित किया, पर यह कथन सच्चाई से सर्वथा परे है। महेश्वराचार्य के शब्दों में—''कुछ विचारकों का कथन है कि भिखारी ने (नाच मंडली के अन्दर) 'टिकुली-चोली-सारी' पहनाकर नवयुवकों को हिजड़े का पाठ पढ़ाया है, जिससे बहुसंख्यक लोग बिगड़ते गये हैं। एतदर्थ, भिखारी ने समाज को गिराया है। शुक्ल जी ने लिखा है कि तुलसीदास ने राम नाम का महत्व इतना आंक दिया है कि उससे आलसी अपाहिजों की संख्या बढ़ गयी है। उपदेश से लाभ उठाने की भी क्षमता होनी चाहिए। रामलीला या रासलीला में नारी का पार्ट करने वाला कोई मूढ़ नाटक के बाद भी अपने को नारी के ही रूप में समझे तो रासलीला या रामलीला का क्या कसूर! चित्रपट देखकर कोई घर-बार छोड़ दे तो उस कमजोर व्यक्ति को घर की चहार दीवारी के अन्दर संदूक में बन्द रहना चाहिए। जिन भिखारी को दुराचरण से घृणा थी, वह व्यभिचार को प्रश्रय कैसे दे सकते थे। वह तो अपने साथ अभिनय करने वाले सहकर्मियों की भी फजीहत करके छोड़ते थे, लाख-लाख बार धिक्कारते थे—'बेटा होके पेन्हलऽ सारी, दाम कमाके भइलऽ भारी, चाहे खीस में देव गारी, कहेले असली बात भिखारी।''[२]

सच तो यह है कि भिखारी ने सामाजिक भटकाव के जाल को छिन्न-भिन्न कर सही राह दिखलाने की हर सम्भव कोशिश की। उनके सूत्रधार और अभिनेता ने जहां दर्शकों का दिल जीत लिया, वहीं विदूषक ने नाटक को बोझिल होने से बचा लिया। भिखारी को नाट्यशास्त्र का किताबी ज्ञान भले ही न हो, मगर व्यावहारिक ज्ञान अवश्य था। यही वजह है कि लोगों को आकर्षित करने के लिए उन्होंने नारी-भेष में पुरुष नर्तकों को मंच पर उतारा। भिखारी की उपस्थिति मंच में प्राण फूंक देती थी। कुल मिलाकर, भिखारी के नाच में इतनी खूबियां थीं कि दर्शक दांतों तले अंगुली दबा लेते थे।

भिखारी के नाच की कुछ विशेषताएं ऐसी भी हैं जिनकी गूंगे के गुड़ की मानिन्द अंतर्मन में सिर्फ अनुभूति ही की जा सकती है, शब्दों में बयान अथवा

विश्लेषण नहीं किया जा सकता। जो लोग भिखारी के नाच के प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं, वे इस सच्चाई से बखूबी वाकिफ हैं।

भिखारी का नाच जिज्ञासा और कौतूहलवश एक बार देखने वाले बार-बार देखने को व्याकुल हो उठते थे और हर बार नये अनुभव व अनुभूति से लैस होकर ही वापस लौटते थे। यह भिखारी की बहुआयामी प्रतिभा की विलक्षणता का ही कमाल था।

भिखारी जैसी विरल प्रतिभा सदियों में इकलौती पैदा होती है और धूमकेतु की तरह अपना अमिट असर छोड़ जाती है। भिखारी के नाच से सबक लेकर अथवा उनकी मंडली से अलग होकर कइयों ने नृत्यमंडली का गठन किया, मगर कोई भिखारी नहीं बन सका।

भिखारी में न तो अमीर बनने की चाह थी, न भौतिकता की अंधी दौड़ में शामिल होने की अभिलाषा ही। उनकी तो दिली तमन्ना थी आजीवन भिखारी ही बन रहने की—'सदा भिखारी रहसु भिखार!'

भिखारी ने निःस्वार्थ भाव से भोजपुरी समाज को जी खोलकर लुटाया और दर्शकों को सामाजिक सरोकार से जोड़कर गहरे तक संवेदित-स्पंदित करने में अनुकरणीय भूमिका अदा की। इन्हीं अर्थों में भिखारी के नाच की सार्थकता है। अपने गीतों को भिखारी ने जो मौलिक संगीतात्मकता दी, वह 'रवीन्द्र संगीत,' 'विद्यापति संगीत' की तरह ही भोजपुरी की अमूल्य धरोहर है।

संदर्भ

१. भिखारी : ११६

२. वही : पृष्ठ १२०

नारी विषयक व प्रगतिशील दृष्टिकोण

प्रगतिशीलता का अर्थ परम्परा से कटना नहीं होता। परम्परा की अच्छाइयों को ग्रहणकर उनका वर्तमान संदर्भ में इस्तेमाल ही प्रगतिशील मानसिकता का द्योतक है।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन हालांकि विद्रोही महापंडित हैं, लेकिन समस्त परम्परा से विद्रोह की वकालत नहीं करते, अपितु 'अतीत की प्रगतिशीलता का प्रश्न' शीर्षक अपने एक चर्चित लेख में उन्होंने लिखा है : **'यदि कोई प्रगतिशीलता के नाम पर हमारे पुराने अमर कलाकारों —वाल्मीकि, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति, वाण, सरहपा, जायसी, सूर, तुलसी से लेकर प्रेमचन्द, प्रसाद तक से हाथ धो लेना अपना कर्त्तव्य समझता हो तो वह प्रगतिशीलता नहीं है।''**[1]

भिखारी ठाकुर के अवदानों का मूल्यांकन भी उस परम्परा से जुड़कर करना ही समीचीन होगा।

जिन दिनों भिखारी का आविर्भाव हुआ, हमारा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं की स्थिति और भी त्रासद व दयनीय थी। मर्दों की दासता आजीवन झेलने को अभिशप्त स्त्रियां उपभोक्ता-वस्तु भर थीं। जन्म से ही उनके साथ सौतेला व्यवहार किया जाता। होश संभालते ही उन्हें चूल्हे-चौके और घरेलू काम-काज की चाकरी में उलझा दिया जाता। बाल विवाह की प्रथा जोरों पर थी और प्रायः कमसिन किशोरी को किसी बूढ़े के हाथ में सौंपकर मां-बाप चैन की सांस लेते थे। बेटी बेचकर धन कमाने का रिवाज था और दौलत की बदौलत बूढ़े-अपाहिज किसी सुकुमारी कन्या को अर्द्धांगिनी बनाकर स्वयं को गौरवान्वित महसूसते थे। नतीजतन, वृद्ध पति तो कुछ दिनों के बाद ही परलोक सिधार जाता था, मगर ताजिन्दगी रोना-कलपना ही बेचारी विधवा की नियति बन जाती थी। यदि विधुर चाहे तो कई दफा शादी रचा सकता था, पर विधवा-विवाह पर सख्त पाबन्दी थी। विधवाएं त्रिशंकु-सा जीवन जीने को अभिशप्त थीं। धोबी के कुत्ते की मानिन्द वे न घर की होती थीं, न घाट की ही। न उन्हें ससुराल में जगह मिलती थी, न मायके में ही। ब्याह रचाकर, गौना कराकर नयी-नवेली दुल्हन गांव में ही छोड़ दी जाती थी और पति रोजी-रोटी की फिक्र में नगर-महानगर की खाक छानने को निकल पड़ता था!

बहुतेरे युवक तो गांव की पत्नी को भूलकर महानगर की शहरी युवती से ही दूसरा ब्याह रचा लेते थे और इस प्रकार जायज व जारज दो विवाहिताएं नारकीय जीवन जीने को विवश हो जाती थीं। गांव की भोली-भाली पत्नी अपने भाग्य को कोसती, परदेशी पति की प्रतीक्षा किया करती थी। गांव में वह मानसिक व शारीरिक यंत्रणाएं तो झेलती ही थीं, बड़मुंहवा लोगों की हवस का शिकार भी होती थीं। कुल मिलाकर, नारी का जीवन नरक का पर्याय बनकर रह गया था। उस पर भी तुर्रा यह कि एक ही कोख से जनमे बेटे के आगमन की खुशी में नाच-सोहर का इन्द्रधनुषी आलम, परन्तु बेटी की पैदाइश पर शोक की मातमी लहर। मर्दों के खाने-कमाने के अनेक रास्ते, किन्तु परदे में खूंटे से बंधी गाय जैसी स्त्रियों के लिए सारे किवाड़ बन्द!

उन्हीं दिनों महापंडित राहुल ने औरतों की दारुण दशा पर अपनी मातृभाषा भोजपुरी में 'मेहरारुन के दुरदसा' शीर्षक नाटक लिखा, जिसमें प्रयुक्त गीत के माध्यम से उठाया गया सवाल झकझोरकर रख देता है :

एके माई-बपवा से, एक ही उदरवा से
दूनों के जनगवां भइल रे पुरुखवा।
पूत के जनमवां में नाच आ सोहर होला
बेटी के जनम परे सोग रे पुरुखवा।।
धनवा-धरतिया प बेटवा के हक होला
बेटिया के किछुवो ना हक रे पुरुखवा।
मरदा के खइला-कमइला के रहता बा
तिरिया के लागेला केवाड़ रे पुरुखवा।।

जिम्मेदार रचनाकार चूंकि समाज के सबसे दबे-कुचले वर्ग को ही अपनी रचनाधर्मिता का विषय बनाता है, अतः भिखारी ठाकुर का ध्यान सर्वप्रथम मौत से भी बदतर जिन्दगी जीती औरतों पर ही गया। जत्था नाई परिवार में जन्म लेकर उन्होंने निर्धनता व हजामत बनाने, चिट्ठी न्यौतने का बंधुआ जीवन ही विरासत में प्राप्त किया था। घर-घर जाने की पूरी छूट थी उन्हें! अतः तथाकथित सम्भ्रांत परिवारों की सामंती मानसिकता, भोग-विलास की प्रवृत्ति और झूठे मानमूल्यों के अहम् में फूलकर कुप्पा होने की अहमन्यता उन्होंने अपनी नंगी आंखों से देखी थी। नशे की खुमारी अच्छे-अच्छे परिवार को भी ले डूबती थी। और खामियाजा

भुगतना पड़ता था परिवार की महिलाओं को। भेड़-बकरियों से भी गयी-गुजरी हालत समाज में स्त्रियों की थी। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' की उक्ति महज किताबी बनकर रह गयी थी और समूचा समाज उसकी जमकर खिल्ली उड़ा रहा था। भिखारी का जन्मजात कवि-हृदय द्रवित हो उठा और काव्य-रूपकों के रूप में उनकी संवेदना प्रस्फुटित होने लगी।

भिखारी पूरे पांच दशकों तक अपने नाटकों के लेखन और मंचन के ज़रिये भोजपुरी समाज पर छाये रहे और उस दौरान उन्होंने महिलाओं की बदहाली को ही अपनी प्रभावोत्पादक प्रस्तुतियों का विषय बनाया। 'बेटी-वियोग' में खेलने-खाने की उम्र की बिटिया का ब्याह धन के लोभ में बूढ़े के साथ करने की सामाजिक विसंगति को जहां मार्मिकता से चित्रित किया गया, वहीं बचपन में शादी का परिणाम भुगतने को विवश विधवा का कारुणिक जीवन 'विधवा-विलाप' में अभिव्यक्त हुआ। 'कलियुग प्रेम' (पियऊ निसइल) में ताड़ी-शराब के नशे में धुत्त पति के कुकर्मों की सजा भोगती पत्नी की दुर्दशा की दास्तान है तो 'गंगा-स्नान' में ढोंगी साधुओं की ठगी का शिकार अबला की व्यथा-कथा है। परदेशी पति की सुध-बुध खोकर बाट जोहती गांव की नई-नवेली पत्नी के विरह और त्रासद जीवन की अनकही कथा 'विदेसिया' में सार्थक ढंग से पिरोयी गयी है। मगर अश्रुविगलित करुणा का प्रदर्शन करने के बावजूद भिखारी ने नारी को कहीं भी कमजोर साबित नहीं किया है। पूंजीवादी व्यवस्था ने भले ही उसे उपभोक्ता वस्तु का दरजा दे रखा हो, मगर नारी का स्थान आज भी समाज में सर्वोपरि है। नारी के सर्वोच्च अधिकार का संदेश भिखारी ने अपने नाटक 'गबरघिचोर' में बखूबी दिया है और यह साबित कर दिया है कि अबला का संबोधन पाने वाली नारी वास्तव में सबला होती है!

भिखारी के नाच-तमाशे को देखने वाली नारियां नहीं होती थीं, बल्कि होते थे वे पुरुष ही जो घर-परिवार में औरतों पर जुल्म ढाते थे। भिखारी ने उनकी संवेदना को लगातार इस कदर झकझोरा कि बाल-विवाह और बेमेल विवाह में काफी हद तक कमी आ गयी। मंचों से भिखारी के बार-बार कोसने और धिक्कारने का ही परिणाम था कि परदे में छिपी हुई औरतें बाहर आने लगीं और उनके अंतर्मन में अस्तित्वबोध का भाव जाग उठा। मगर आज भी औरतों पर जुल्म ढाने का सिलसिला अनवरत जारी है और कई मायनों में तो और भी पेचीदगी आ गयी है। आये दिन वे कहीं बलात्कार का शिकार होती हैं तो कहीं जिन्दा जला दी जाती हैं। बालिकाओं की भ्रूण-हत्या भी धड़ल्ले से हो रही है और पुरुषों की क्रूरता व पाशविकता चरमोत्कर्ष पर है। भिखारी के समय में कुरीतियों-

अंधविश्वासों के मूल में अज्ञानता और अशिक्षा थी, मगर आज का शिक्षित समाज इस कदर अमानवीय व स्वार्थांध हो चला है कि नारी पूरी तरह सिर्फ देह के दायरे में कैद होकर और खरीद-फरोख्त की बेजान वस्तु-भर बनकर रह गयी है। आज सांस्कृतिक प्रदूषण और पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण फैशन बन गया है और आज के समाज के पुनर्जागरण हेतु भिखारी जैसे जनकवि-कलाकार की एक बार फिर नितान्त आवश्यकता महसूस की जा रही है, क्योंकि 'बदले हैं हथियार जंग के, जुल्मों की तासीर वही है....धान कूटती आंगन-आंगन धनिया की तकदीर वही है...'

नारी की ज्वलंत समस्याओं से जुड़े भिखारी के नाटक समाज की यथास्थिति का आईना-भर नहीं हैं, बल्कि समस्याओं से जूझने की सार्थक पहल भी करते हैं और आदर्श प्रतिमान स्थापित करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं। 'विदेसिया' में पति के अचानक परदेश चले जाने पर नायिका मन-ही-मन इस तथ्य की पड़ताल भी करती है कि इसके मूल में किसकी साजिश हो सकती है :

केइ हमरा जरिया में भिरवले बाटे अरिया हो,

चकरिया दरिके ना,

दुख में होत बा जतसरिया हो,

चकरिया दरिके ना!

इसी प्रकार 'गबरघिचोर' में जब सवाल उठता है कि पुत्र पर किसका अधिकार बनता है— पिता का, मां का अथवा उस युवक का, जिसने बच्चे की मां के साथ नाजायज संबंध स्थापित किया था तो बच्चे की मां का सवाल होता है :

घर में रहे दूध पांच सेर, केहू जोरन दिहल एक धार ;

का पंचाइत होखत बा, घीउ साफे भइल हमार!

और पंच का फैसला होता है—'जेकर दूध, तेकर घीव!' इसी तरह से मातृत्व की परीक्षा में भी औरत बाजी मार ले जाती है और यह साबित कर देती है कि स्त्री का हक समाज में सबसे बढ़कर है। एक नहीं, दो-दो मात्राएं, नर से भारी नारी।

हालांकि भिखारी ने न तो किसी राजनीतिक संगठन का आश्रय लिया, न किसी 'वाद' से ही सम्बद्ध रहे, पर वह सही मायने में एक प्रगतिशील सोच के

रचनाकार थे और उनकी प्रतिबद्धता समाजोत्थान व मानवीय मूल्यों के प्रति थी। सबसे दबे-कुचले तबके और विशेषकर शोषित-उत्पीड़ित आधी आबादी को वह उसके जायज हक दिलवाना चाहते थे। इस प्रकार, उनके साहित्य में सभी प्रगतिशील तत्व विद्यमान हैं।

डॉ० धीरेन्द्र बहादुर चांद ने भिखारी-साहित्य में प्रगतिशीलता के तत्वों की तलाश करते हुए लिखा है—"अगर कलाकार वास्तव में कलाकार है तो वह अपने मन, विचार और भावना को हम तक पहुंचाने की कोशिश करता है। मार्क्सवादी लोगों का विचार है कि सौन्दर्य-भावना आदमी के भीतर ऐतिहासिक परिस्थिति के प्रभाव, उसकी उत्पादन-प्रक्रिया के दौरान जन्मी कला और संस्कृति के बीच पैदा होती है। जो भी हो, मेरे विचार से भिखारी ठाकुर का साहित्य प्रगतिशील साहित्य है, जो जनहित का साधक है और समाज के भीतर फैले दोषों का नाश करता है। उनका साहित्य संवेदना और आदमी के सच्चे कर्म को जगाता है, लोगों को गिरे हुए विचार से ऊँपर उठाने के नैतिक आदर्श की प्रेरणा देता है तथा आध्यात्मिक-सांस्कृतिक धरातल को प्रौढ़ बनाने में सहायक होता है। इन सबके मूल में लोकजीवन के प्रति भिखारी की निष्ठा और प्रेम का भाव माना जाएगा। भिखारी ठाकुर का सौन्दर्य-बोध लोकमंगल से भरा हुआ है। कर्म, भाव, व्यवहार, विचार, वाणी और अभिव्यक्ति में हर जगह मर्यादा समाहित है, जहां सौन्दर्य-बोध के दर्शन होते हैं।"[२]

महेश्वराचार्य भिखारी को निर्धन वर्ग का प्रतिनिधि कलाकार व सच्चा समाज-सुधारक मानते हैं। उनका मत है—"भिखारी को यदि सच्चा समाज-सुधारक कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। गिरे हुए हिन्दू समाज के वास्तविक चित्र को लेकर भिखारी उसकी कड़ी आलोचना किया करते हैं। देश-काल की स्थिति के अनुसार वह किसी भी सामाजिक चित्र का यथार्थ रूप खड़ा कर दिया करते हैं। लगता है, जैसे वह चित्र हमारा रात-दिन का जाना-पहचाना हुआ हो। जिस घटना को हम समाज में रोजमर्रा होते देखते हैं, उसे ही हम भिखारी के सामाजिक नाटकों में पाते हैं।"[३]

अपने मत को तनिक और विस्तार देते हुए महेश्वराचार्य अन्यत्र कहते हैं—"भिखारी की रचनाओं में समाज के प्रति कल्याण की भावना निहित है। उनके हास्य और व्यंग्य का उद्देश्य यही है कि समाज अपने सामाजिक दोषों को समझे और उससे बचे। अपने परिवेश में होती हुई बुराइयों को भिखारी नित्य देखते थे और देखकर उनके हृदय में पीड़ा होती थी। वह उन सामाजिक बुराइयों

को लेकर एक चित्र तैयार करते थे और समाज के सामने नाटक के रूप में पेश करते थे। प्रायः उनके सभी नाटक सामाजिक बुराइयों से पीड़ित होकर ही लिखे गये थे। भिखारी मूलतः गरीब वर्ग के ही कलाकार एवं कवि थे। वह गरीबों के प्रतिनिधि भी थे। उनके अभिनय देखने वाले दर्शक अधिकांशतः गरीब ही थे। गरीबों के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति भरी हुई थी। जिस प्रकार उन्हें शौकीन गरीब अप्रिय थे, उसी प्रकार उनके बुरे आचरण से भिखारी के मन में घृणा थी।''[४]

कुल मिलाकर, भिखारी की रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्वों की भरमार है, मगर वह प्रगतिशीलता सायास नहीं, बल्कि अनायास ही प्रस्फुटित हुई है। उन्होंने अनेक उर्मिलाओं की वेदना को अपने गाने-तमाशे का विषय बनाया और जन चेतना जगाने की दिशा में सार्थक पहल की। भिखारी की प्रगतिशीलता न तो ओढ़ी हुई है और न जबरन थोपी ही जाती है। बातों-ही-बातों में हंसाते हुए रुलाना और रुलाते हुए आक्रोश व अग्नित्व से भर देना भिखारी के लोक साहित्य की खासियत है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। निरीह जनता के लिए जनता का साहित्य रचने वाले भिखारी को याद करते हुए प्रो० हरि किशोर पाण्डेय ने ठीक ही कहा है :

उनका शब्द का घुंघरुन में बोलल गांव के पीड़ा,
इहां के उर्मिलन के लाज भोजपुरिये में रह गइल।
अनेत का गोड़ूखुल के नाटक का नहरनी से
बड़ा बारीक उसकवलन, जे देखल, हंस के सह गइल।
ऊ एक आंख से हँसलन, मगर एक आंख से रोवलन,
राजा भाव भिखारी नांव गांवे-गांव रह गइल।

संदर्भ

१. योद्धा महापंडित : राहुल सांकृत्यायन : उर्मिलेश : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना; पृष्ठ ७१

२. भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका : भिखारी ठाकुर जन्म शती अंक, पृष्ठ ४४ से अनूदित।

३. भिखारी; पृष्ठ ८३

४. वही : पृष्ठ १०५

भोजपुरी और भिखारी

लोकभाषा में अकूत क्षमता होती है। अवधी का महाकाव्य 'रामचरित मानस' गोस्वामी तुलसीदास को न सिर्फ अमरत्व प्रदान करने वाला, बल्कि भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर भी साबित हुआ।

तकरीबन बीस-बाईस करोड़ भोजपुरी भाषा-भाषी देश-विदेश में फैले हुए हैं और इसकी लोकप्रियता दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। कोठे से क्रांति तक और घर-परिवार, खेत-खलिहान से लड़ाई के मैदान तक भोजपुरी गीत शोहरत की बुलंदियों को छूते रहे हैं। रघुवीर नारायण के बटोहिया गीत 'सुन्दर सुभूमि भइया भारत के देसवा से, मोर प्रान बसे हिम खोह रे बटोहिया' को स्वाधीनता-संग्राम सेनानियों के बीच राष्ट्रीय गीत का दरजा प्राप्त था। महेन्दर मिसिर के गीत जन-जन को संवेदित करते रहे हैं। भोजपुरी क्षेत्र के प्रख्यात रचनाकार —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० विद्या निवास मिश्र, नामवर सिंह से डॉ० केदार नाथ सिंह तक—भोजपुरी की शक्ति व सामर्थ्य की बदौलत ही हिन्दी में स्थापित हैं।

भिखारी ठाकुर का जन्म से ही अपनी मातृभाषा भोजपुरी के प्रति अनन्य अनुराग था। बचपन में गायों की चरवाही करते हुए उनके भीतर का आशुकवि तुकबंदी करने लगा था। लुक-छिपकर नाच के मंचों से उन तुकबंद गीतों का गायन भी शुरू कर दिया था। तभी उन्हें भागकर खड्गपुर जाना पड़ा और वहां बंगाल की 'यात्रा' देखते ही अपनी मातृभाषा के लिए उनके हृदय में छिपा मोह पुनर्जागृत हो उठा और उन्होंने भोजपुरी तथा भोजपुरी भाषियों के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित करने की ठान ली। फिर तो तीस वर्ष की उम्र में उनके स्वर गूंज उठे और मातृभाषा की अकूत क्षमता को भांपकर वह स्वयं भी चमत्कृत रह गये। भिखारी के ही शब्दों में :

तीस बरिस के भइल उमिरिया,
तब लागल जिउ तरसे,
कहीं से गीत, कवित्त कहीं से
लागल अपने बरसे।

इस चमत्कार को बिन बादल की बरसात, बिना वृक्ष के फल और बिना

जवानों की विजय की तरह ही कोई दैवी चमत्कार भले ही मानते हों भिखारी, मगर यह परिचायक है मातृभाषा की अपार शक्ति का।

बिना बिरिछ के लागल फल।
घटा ना लउकल, बरिसल जल।
जइसे बिना फउज के जीत।
नजर परे बालू के भीत।
तसहीं करनी बाटे मोर।
मातृभासा के ह ई निचोर।

यहीं समालोचक महेश्वराचार्य कह उठते हैं—"भिखारी को अच्छी तरह ज्ञात है कि उनकी लोकप्रियता के मूल में भोजपुरी भाषा भी है। इस भाषा के माध्यम से भिखारी ने हिन्दुस्तान की जनता को भिक्षा देकर कृतार्थ कर दिया है। भोजपुरी का बड़ा-से-बड़ा विद्वान भी भिखारी के समक्ष भाषा की मधुर भिक्षा लेने के लिए मुंह फैलाकर खड़ा है। तनिक भिखारी द्वारा प्रस्तुत 'विभावना' अलंकारों की झड़ी देखिये –

'बिना गाछ के लागल फल', 'घटा ना लउकल, बरिसल जल',
'बिना फउज के जीत,' 'बालू के भीत' आदि"[9]

मगर भिखारी तो बार-बार बस यही दोहराते हैं कि न तो उन्हें गाने-बजाने की कला आती है, न गीत-कवित्त लेखन की ही। यह तो जनता की कद्रदानी है कि उसने उन्हें प्रोत्साहित करने की गरज से बार-बार सराहा है। भिखारी के ही शब्दों में :

तनिक न आवत गावे-बजावे।
काहे दो लागल लोग के भावे।

आज जबकि आत्म प्रशस्ति और शेखी बघारने का फैशन है, भिखारी ने डंके की चोट पर कहा था कि वह बिलकुल अनपढ़-गंवार हैं। जंगल-दियारे के निवासी भिखारी न तो खुद को गवैया मानते थे, न ही वक्ता अथवा विद्वान। वह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि उन्हें जो भी थोड़ी-बहुत लोकप्रियता मिली है, वह मातृभाषा भोजपुरी को अपनाने की वजह से ही सम्भव हो सकी है:

भोजपुरी बोली ह जवन।

अछरि प परत बा तवन।।
तवने-तवने लिखत बानीं।
ना विद्या के हालत जानीं।।
दिअरा-जंगल के रहवइया।
वकता हईं न हईं गवइया।।
झूठो राम-नाम कहला से।
भोजपुरी भाषा गहला से।।
असहीं नाम फइलते जाता।
रेडियो से कासी-कलकत्ता।।

भोजपुरी के लब्धप्रतिष्ठ कवि अविनाश चन्द्र विद्यार्थी भिखारी की लोकप्रियता का श्रेय 'घर के गुड़' भोजपुरी के बेहतर इस्तेमाल की कला को देते हैं। विद्यार्थी के ही शब्दों में—" भाई-बहिनी लोग जुग-जुग से कतने परब-तेवहार, बिआह-गवन, जनेव, छठी-पिड़िया, मातादाई, कजरी, जंतसारि आ सोहर का अनमोल गीतन के गावत आ रहल बा। बूढ़-पुरनियां आ नवही लोग निरगुन आ बिरहा-कहंरवा के सुर अवले जगवले बा। जनकवि भिखारी ठाकुर एही लोकगीतन का धुन में अनेक गीत रचले। उनका नाच-तमासा में अधिका हाथ एह रोचक गीतने के बा। उनुका गीतन के पइसार कतना दूर ले भइल, ई बतावे के नइखे। मातृभाषे के सवाल ह कि भावुक भिखारी हजाम का मन में एक दिन 'कहीं से गीत, कहीं से कहीं से लागल अपने बरिसे।' ऊ छूटि के एह बरखा मेंअपने नहइलें आ लोगो के सराबोर करे खातिर अनआसे हाथे लागल गीतन के जल भरि-भरि उबिछे लगलें। नतीजा ई भइल जे भोजपुरी इलाका कबीर-तुलसी के पद आ चउपाई का बाद 'भिखरिया के नाच' के एगो-ना-एगो गीत अपना जबान पर चढ़ा लिहलन। 'घर का गूर' के हवेख भिखारी ठाकुर से बढ़िके आन केहू दोसर ना होखल।"[2]

निःसंदेह, भिखारी ने भोजपुरी को अभूतपूर्व गहराई, ऊँचाई और विस्तार दिया। वह भोजपुरी संस्कृति के जीवन्त प्रतीक थे। उन्होंने लोक संस्कृति से गहरे जुड़कर, भोजपुरी की खांटी माटी में रच-बसकर परम्परा और आधुनिकता के बीच जो सामंजस्य स्थापित किया, वह भोजपुरी साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

आज फिल्मों और लोकगायकी की बदौलत भोजपुरी को लोकप्रियता मिली

है जरूर, मगर उस सस्ती शोहरत का ही नतीजा है कि भोजपुरी अश्लीलता, फूहड़ता का पर्याय बनकर रह गयी है और इसकी अस्मिता ही खतरे में पड़ गयी है।

भिखारी ने विश्वसनीय यथार्थ को मानवीय संवेदना से जोड़कर लोक साहित्य को शिष्ट साहित्य की ओर मोड़ा, मगर सामाजिक मर्यादा का कहीं भी उल्लंघन नहीं होने दिया। उन्होंने तर्जे-बयानी तो 'लोक' से ली, पर तत्कालीन सामाजिक संदर्भ में उसका सार्थक उपयोग किया। भोजपुरी में लोकनाटकों के प्रथम प्रणेता, 'बिदेसिया' शैली के प्रवर्त्तक के रूप में ही नहीं, एक सशक्त गीतकार के रूप में भी भिखारी अमर रहेंगे।

जिस प्रकार बंगला के रवीन्द्र नाथ ठाकुर और मैथिली के विद्यापति उन भाषाओं के प्राण हैं, ठीक उसी प्रकार भोजपुरी की जान भिखारी में बसती है। इस जन-कवि को अलग कर देने पर भोजपुरी की तेजस्विता धूमिल पड़ सकती है। भोजपुरी की अस्मिता के प्रतीक हैं भिखारी।

मगर ऐसी बात नहीं है कि भिखारी ने भोजपुरी में जो कुछ लिखा वह ध्रुव सत्य है। समय-संदर्भ के मद्देनजर साहित्य भी परिवर्तित-परिवर्द्धित होता रहता है। इस प्रसंग में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने जो उत्तर दिया था, वही भिखारी-साहित्य के लिए भी लागू होता है। उन्होंने कहा था—"बुद्ध कह गये हैं—सब्बम् खनिकम् (सब कुछ क्षणिक है) और फिर लेनिन भी भी कहा है—'कुछ भी अंतिम नहीं है।' इसलिए मैं नहीं मानता कि कोई भी मनुष्य पूर्ण है। मैंने कोई सत्य का एकाधिकार नहीं रखा है। मैं अपना काम करता हूं। भावी पीढ़ी आएगी और मेरे काम को सुधारेगी।"[३]

तभी तो उन्होंने भिखारी-साहित्य से 'एने-ओने तनी-तूनी' छांटने की जरूरत पर बल दिया है।

किन्तु यह भी ध्रुव सत्य है कि जब भी लोकनाटकों और भोजपुरी भाषा-साहित्य का जिक्र होगा, भिखारी चर्चा के केन्द्र में होंगे, क्योंकि उन्होंने न सिर्फ इतिहास रचा है, बल्कि भोजपुरी के सामाजिक-सांस्कृतिक-आध्यात्मिक धरातल को प्रौढ़ता प्रदान की है। सिपाही सिंह श्रीमंत के शब्दों में—"परम्परा से प्रचलित लोकनाट्य भिखारी ठाकुर जैसी हस्ती को पाकर ही आधुनिक लोकनाट्य के रूप में उभरा। जब कभी कोई खोजी विद्वान भोजपुरी के आधुनिक साहित्य के प्रारंभिक काल का अध्ययन करने बैठेगा तो उसके सम्मुख तत्कालीन पूर्व पीठिका के रूप

में भिखारी ठाकुर मौजूद रहेंगे। उसी प्रकार, जब कभी कोई अनुसंधानकर्ता भोजपुरी लोक साहित्य से भोजपुरी शिष्ट साहित्य की कड़ी जोड़ने लगेगा तो उसके सामने भिखारी ठाकुर का मंजा हुआ चित्र उभरेगा।"[४]

संक्षिप्ततः, भोजपुरी आन्दोलन के इतिहास-पुरुष के रूप में भिखारी सदा याद किये जाएंगे। सचमुच, वह भोजपुरी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे।

संदर्भ

१. भिखारी ; पृष्ठ २१
२. भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका : दिसंबर ८७ ; पृष्ठ १६
३. योद्धा महापंडित : राहुल सांकृत्यायन ; पृष्ठ १८
४. अभ्यंतर : जनवरी-मार्च ८८ ; पृष्ठ ३२ से अनूदित।

परिशिष्ट -१

भिखारी के चंद गीतों की बानगी

एक

करिया न गोर बाटे, लामा नाहीं हउअन नाटे,
मझिला जवान साम सुन्दर बटोहिया।
घुठी प लें धोती कोर, नकिया सुगा के ठोर,
सिर पर टोपी, छाती चाकर बटोहिया।
पिया के सकल के तू मन में नकल लिखऽ,
हुलिया के पुलिया बनाइ ल बटोहिया।
आवेला आसाढ़ मास, लागेला अधिक आस,
बरखा में पिया घरे रहितन बटोहिया।
पिया अइतन बुनियां में, राखि लिहतन दुनियां में,
अखड़ेला अधिका सावनवां बटोहिया।
आई जब मास भादो, सभे खेली दही-कादो,
कृस्न के जनम बीती असहीं बटोहिया।
आसिन महीनवां के, कड़ा घाम दिनवां के,
लूकवा समानवां बुझाला हो बटोहिया।
कातिक के मासवा में, पियऊ के फांसवा में,
हाड़ में से रसवा चुअत बा बटोहिया।
अगहन-पूस मासे, दुख कहीं केकरा से?
बनवां सरिस बा भवनवां बटोहिया।
मास आई बाघवा, कंपावे लागी माघवा त

हाड़वा में जाड़वा समाई हो बटोहिया।
पलंग बा सूनवां, का कइलीं अयगुनवां से,
भारी ह महीनवां फगुनवां बटोहिया।
अबीर के धोरि-धोरि, सब लोग खेली होरी,
रंगवा में भंगवा परल हो बटोहिया।
कोइलि के मीठी बोली, लागेला करेजे गोली,
पिया बिनु भावे न चइतवा बटोहिया।
चढ़ी बइसाख जब, लगन पहुंची तब,
जेठवा दबाई हमें हेठवा बटोहिया।
मंगल करी कलोल, घरे-घरे बाजी ढोल,
कहत भिखारी खोजऽ पिया के बटोहिया।

(विदेसिया से)

दो

कायापुर घर हउए, पानी से बनावल गउए,
अचरज अकथ ह नाम हो बिदेसिया।
चललीं बहरवा से कानवां परल मोरा,
सती का विपति के मोटरिया बिदेसिया।
हउई बोटहिया, लागल जब मोहिया त,
जोहिया लगाइ कर अइलीं बिदेसिया।
तोहरा जनानावां के आसरा लागल बाटे,
कब आइके देबऽ दरसनवां बिदेसिया।
मोरवा मचावे जइसे सोरवा गरज सुनि,
प्यारी छपटाली राही देखि के बिदेसिया।

छोड़िकर घरवा के बहरी ओसरवा में,
जल बिनु मछरी के हलिया बिदेसिया।
बीसवा बरिसवा के, अनहीं ना केस पाके,
सांवर बरन प्यारी धनियां बिदेसिया।
माथवा के बारवा भंवरवा समान बाटे,
मुंहवां दीपकवा बरत बा बिदेसिया।
फूलवा सरिस जगदीशजी बनाइ कर,
पति के बियोग देइ दिहलन बिदेसिया।
सुनिकर कानवां में, गुनिकर मनवां में,
कहत भिखारी, घरे चलि जा बिदेसिया।

('बिदेसिया' से)

तीन

रंडी में ना कुछ बाटे, कुत्ता जइसे हाड़ चाटे,
एको नाहीं घाट तूहूं लगबऽ बिदेसिया।
छोड़िद अधरम, मिजाज के नरम तूं,
मनवां में करि लेहु सरम बिदेसिया।
धरम का नाव पर चढ़ि के मउज करऽ,
हरऽ बिरहिनियां के दुख हो बिदेसिया।
आव तानी घर देखि, चलि जाई सान-सेखी,
डूबि मरऽ घुठी भर पानी में बिदेसिया।
तोहरी तिरियवा किरियवा के खाइ कर,
कहतारी पति बिनु गति ना बिदेसिया।
बिनु देखे चैन ना, दिन चाहे रैन ना,
मैन बेचैन करत बा बिदेसिया।

बोलिया कोइलिया के गोलिया लागत बाटे,
होलिया समान फूंक दिहलऽ बिदेसिया।
आगि लागे धन में, पिलेग होखे तन में ओ
मति केहू परे रंडी फन में बिदेसिया।
जाके प्यारी धनियां के, हर लऽ हरनियां के,
छोड़ि दऽ कुचलिया रहनियां बिदेसिया।
कहत भिखारी सरदारी अतने में बाटे,
पनियां बहाने बोधऽ जनियां बिदेसिया।

('बिदेसिया ' से)

चार

जहिया से अइलीं पिया तोहरी महलिया में,
सब दिन रहलीं टहलिया में पियवा।
घर में सब काम, करत सूखल चाम,
सुखवा सपनवां भइल हमरा पियवा।
हरवा जोतत सइयां, तोहरो पिराला पइयां,
रोपेया के मुंह हम ना देखलीं हो पियवा।
बड़की गोतिनियां भइलि मलकिनियां से,
छैला चिकनियां भसुरवा हो पियवा।
नइहर में जाइकर, तोहरे इरिखा पर,
भउजी के लइका खेलाइब हम हो पियवा।
कहत भिखारी नाई, दुख देखि के मोर माई,
सुरपुर जाई प्रान तेजि के हो पियवा।

('भाई विरोध' से)

पाँच

साफ क के आंगन-गली के, छीपा-लोटा जूठ मलिके

बनि के रहलीं माई के टहलनी हो बाबूजी।
गोबर-करसी कइला से, पियहा-छुतिहर घइला से
कवना करनियां में चुकलीं हो बाबूजी।
वर खोजे चलि गइलऽ, माल लेके घर में धइलऽ
दादा लेखा खोजलऽ दुलहवा हो बाबूजी।
अइसन देखवलऽ दुख, सपना भइल सुख
सोनवां में डललऽ सोहागावा हो बाबूजी।
बुढ़ऊ से सादी भइल, सुखवो-सोहाग गइल
घर पर हर चलववलऽ हो बाबूजी।
अबहूं से करऽ चेत, देखि के पुरान सेत
डोला काढ़ऽ, मोलवा मोलइहऽ मत हो बाबूजी।
घुठी पर धोती तोर, आस कइलऽ नास मोर
पगली पर बगली भरवलऽ हो बाबूजी।
हंसत बा लोग गंइयां के, सूरत देखि के संइयां के
खाई के जहर मरि जाइब हम हो बाबूजी।

('बेटी वियोग' से)

छह

लूजुर-लूजुर पिया, देखऽ मुंह लेके दिया,
कहीं कइसे, कहे नइखे आवत हो बाबूजी।
मुंहवां में दांत नाहीं, भात चूवे गाल माहीं,
बावला पर भीतरी सलंदर हो बाबूजी।
जीभ-दांत-ओठ-गाल, पान से भइल बा लाल,
काल लेखा लागत बा सुरतिया हो बाबूजी।
रतिया के छतिया में बतिया जरेला मोरा,

बीच डललस बिचवानं मोर हो बाबूजी।
हम कहि के जात बानीं, होई अबकी जीव के हानी,
नाहीं देखब नइहर नगरिया हो बाबूजी।
रोइ-रोइ गवला के, अइसन पद मिलवला के,
नाम ग्राम कहि के सुनावत बानीं हो बाबूजी।
हईं हम नाई जात, खोलि दिहलीं मुख बात,
लछिमी के लछन उतरलऽ हो बाबूजी।
पुरुब के कोना घर, गंगा के किनार पर,
छपरा से तीन कोस दिअरा में बाबूजी।
कहत भिखारी तूं खरारी के इयाद करऽ,
फेरु मति करिहऽ अइसन काम तूं हो बाबूजी।

('बेटी बियोग' से)

सात

कतना दिनन से कहत बानीं तोहरा से,
कइलऽ ना कान हमार बात पियऊ निसइल।
बेचि के कमाई पुरुखन में उड़ाई कर,
अपने भइलऽ लहंगाझार पियऊ निसइल।
खेत-बारी, गहना तूं बेच देलऽ निसा खातिर,
घरे नइखे छीपा के ठेकान पियऊ निसइल।
सूई-डोरा घर में ना, लुगरी फाटल बाटे,
लड़िका रहत बा उघार पियऊ निसइल।
पंइचा मिलत नइखे, कवन जतन करीं,
हफ्ता से बीतत उपास पियऊ निसइल।
धन में रहल बाटे बेरा लड़िका का हाथे,

तेहि खातिर करत बाड़ऽ मार पियऊ निसइल।
काढ़ि के सोनार घर, बेचि द अबहीं जाके,
खस्ची के रचिद उपाय पियऊ निसइल।
अगिया लागल बाटे अन बिनु पेटवा में,
चाक लेखा नाचता कपार पियऊ निसइल।
रहता चले के तनी हूब न करत बाटे,
हमरा के अन में मिला द पियऊ निसइल।
चिखना-सराब छोड़ऽ लड़िका के मुंह देखऽ,
अतना अरज मोर मानऽ पियऊ निसइल।
छोड़ि द सराब, तोहे कहता खराब सभे,
हंसता नगरिया के लोग पियऊ निसइल।
कुल-परिवार के खियाल करऽ मन माहीं,
जइसन हउवऽ खानदान पियऊ निसइल।
भजऽ सीताराम, हई जाति के हजाम, मोर
नाम ह भिखारी, जिला सारन पियऊ निसइल।
पोस्ट गुलटेनगंज, कुतुबपुर मोकाम खास,
दिअरा में गंगा के किनार पियऊ निसइल।

['कलियुग प्रेम' (पियऊ निसइल) से]

आठ

हम ना बसब तोहरा नगरी ए जसोदा जी,
हम ना बसब तोहरा नगरी।
मोहन जी धूरी में फाना उड़ावेलन,
पनिघट पर फोरेलन गगरी। ए जसोदा जी...
अबहीं त घरहीं में चरचा चलत बा,

जान जाई दुनिया भर सगरी। ए जसोदा जी....
रसिक बिहारी कपारे पड़ल बाड़न,
नित दिन बेसाहेलन रगरी। ए जसोदा जी...
कहत भिखारी बड़ाई होई एही में,
नन्द जी के बड़का बा पगरी। ए जसोदा जी...

('राधेश्याम बहार' से)

नौ

बबुआ सुनहु बात, डगर आवत-जात
केकरो से बोले के गरज बा दुलरुआ?
ओरहन आइल तोर, दुखित भइल मन मोर
काहे भइलऽ अइसन मुंह जोर हो दुलरुआ?
केहू के तूं देलऽ गारी, रोवत घरे अइली नारी,
सारी फारि दिहलऽ गरीब के दुलरुआ!
करि के रगरिया गगरिया केहू-केहू के
फोरिकर फेंकलऽ गेडुरिया दुलरुआ!
भइल बाड़ऽ बावन वीर, दुअरा पर लागल भीर,
काहे जालऽ जमुना का तीर हो दुलरुआ!
माखन-मलाई खालऽ, बछरू चरावे जालऽ,
करे खातिर गिधवामिसान हो दुलरुआ!
छोड़ि द ढिठाई काम, कृष्णचन्द्र बलराम,
करत बा लोग बदनाम हो दुलरुआ!
अबहूं से करऽ ज्ञान, छोड़ि द अइसन बान,
नाहीं त छोड़ब हम ना जान हो दुलरुआ!
धइले बाड़ऽ नीमन साथ, रसरी में बान्हब हाथ,

काहे जालऽ बछरू चरावे हो दुलरुआ!
नोकर बहुत मोरा, कवन फिकिर बाटे तोरा,
घेरले बा लोग चारू ओर से दुलरुआ!
देखि के लागत बा लाज, रहितन जो घरे आज,
मालिक होइतन अनराज हो दुलरुआ!
हिरदय बसहु आई, पितु कृष्ण राधे माई,
कहत भिखारी नाई गाइ के दुलरुआ!

('राधेश्याम बहार' से)

दस

सुनिलऽ हमार कहल, मन बा तोहार दहल,
उमिर मोहन के नादान बा हो गोरिया!
कइसे हेराइल बूध, बोलत नइखू, बोली सूध,
नखऊ विचार बड़-छोट के हो गोरिया!
बबुआ नादान बाटे, लगलू कसीदा काटे,
झूठहूं के लहरा लगवलू हो गोरिया!
झगरे के हऊ मन, कतिना ब तोरा धन,
हन-हन झन-झन छोड़ि द हो गोरिया!
नाहीं त जुलुम होई, राजा जी से कही कोई,
तब नाहीं बसबू नगर में हो गोरिया!
लगन हमार लखि, जरत-मरत बाडू सखी,
अनभल छोड़ि द मनावल हो गोरिया!
परल बाडू हाथवा में, चलऽ हमरा साथवा में,
कहब तोहरा भाई-भउजाई से हो गोरिया!
चलऽ बबुआ दूनों भइया, जहवां इनिकर हवहिन मइया,

नीके पुरवासाठ करिके छोड़ब हम हो गोरिया!
मंहवां के राखऽ लाली, काली कलकत्ता वाली,
कहत भिखारी नाई गाइ के हो गोरिया!

('राधेश्याम बहार' से)

ग्यारह

गंगाजी के भरलो अररिया,
नगरिया दहात बाटे हो,
गंगा मइया! पनिया में जनियां रोवत बाड़ी
कंत विदेस मोर हो!
घरवा में धारवा बहत बा,
पुकारवा होखत बाटे हो,
गंगा मइया! तनवां में अनवां मिलत नइखे
नयना से गिरे लोर हो!
तेरह सऽ एकतालिस साल[1], सावन सुदी,
घर में ना रहल खुदी हो,
गंगा मइया! सुकवा के लुकवा लगाइकर
भइलू काहे निपटे कठोर हो!
कहत भिखारी नाई, गीत गाके,
रचि-रचि चित्त लाके, हो,
गंगा मइया! जनम-जनम दीह दरस
तरस बाटे सांझ-भोर हो!

('गंगा-स्नान' से)

बारह

घरनी चलली घर से मेला।

---

१. फसली संवत

हंसुली का ऊपर से हैकल पहिरली,
सोभत बा कइसन घघेवा। घरनी...
सतुआ-पिसान मनमान नइखे होखत,
खइहन बजार के महेला। घरनी...
अइसन रूप अनूप देखिके
गुंडा कपार पटकेला। घरनी....
कहत भिखारी, जारि जीव दिहली
अतना दुलार के सहेला? घरनी...

('गंगा-स्नान' से)

तेरह

हम ना रहबि जुअनढहना का घर में।
चार भाई अपने बा, तीन भउजाई,
अब कब सुख होई एह लहबर में?
चानी में जानी के बाटे भुलवले,
सोना के गहना न परल गतर में।
बनी चाहे बिगदी, बोलाई चाहे नउजी,
गुजर करबि रहिकर बपहर में।
अभू बुझात नइखे, देखल नइखे,
पूछि लेहब राहगीर से डगर में।
कहत भिखारी, देहाती ना हई,
नइहर हमार बाटे पटना सहर में।

('गंगा-स्नान' से)

चौदह

चरन कमल बलिहारी ए रघुवर!

गनिका-अजामिल-गीध, सुपच के कइलऽ सीध,
हउअऽ तूं अधम उधारी ए रघुवरो चरन....
ताड़िका-सुबाहु मारि, तारि गौतम के नारी,
गइलऽ जनक-फुलवारी ए रघुवर! चरन...
मन तूं घमण्ड तजऽ, मातु-पिता के भजऽ,
उमा सहित त्रिपुरारी ए रघुवर! चरन...
कहत भिखारी दास, चरन में लागल आस,
मन, कर्म, वचन हमारी ए रघुवर! चरन..

('गंगा-स्नान' से)

पन्द्रह

ए मोर जाउत दुलरू, काइ तोहार कइलीं हम नुकसान?
बन में रोएली काकी, अब का रखले बाड़ऽ बाकी?
ए मोर जाउत दुलरू, भइल हीत-नाता में बखानो ए मोर...
कवने कारन करब घात, खोलि के कहि दऽ बात
ए मोर जाउत दुलरू, आजुए से करि लेहब गेयानो ए मोर....
नगर देखलाइ दऽ, तनी-भर दरसन करवाइ दऽ
ए मोर जाउत दुलरू, लागल बा पतोहिया में धेयानो ए मोर....
कहत भिखारी दास, भेजि दिहलऽ सतनास
ए मोर जाउत दुलरू, जम आगे करबऽ का बेयान? ए मोर....

('विधवा-विलाप' से)

सोलह

खोलि दऽ कपट के केवारी हो, मन राधेकृस्न बोलऽ!
सेत भइल केस, काल पकड़लस,
ना जाने, केहि घरी मारी हो, मन राधेकृस्न बोलऽ!

राम नाम में दाम ना लागत,
मिलत बा रतन उधारी हो, मन राधेकृस्न बोलऽ !
घरी-घरी हरिनाम सुमिरि लऽ,
भरी भंडार के कोठारी हो, मन राधेकृस्न बोलऽ!
नर तन पाइ काइ अब करबऽ,
कहत भिखारी रूपधारी हो, मन राधेकृस्न बोलऽ!

('पुत्र-वध' से)

सत्रह

सिव-सतीजी के पूत, देवन में मजगूत,
गिरत बानीं तोहरे चरन में हो स्वामीजी!
गवना कराके गइलऽ, घर के ना सुधि कइलऽ,
मरतानी तोहरा विरोग में हो स्वामीजी!
हाथ-बांहि धइला के, सादी-गवना कइला के,
आज ले ना कइलऽ निगाहवा हो स्वामीजी!
बबुआ भइलन पैदा, कुछ ना मिलल फैदा,
सब विधि कइलऽ बेकैदा हो स्वामीजी!
आस मत नास करऽ, बेटा के रहे द घर,
पगली के प्रान के आधार मोर हो स्वामीजी!
पोसत बानीं बचेपन से, बबुआ के तन-मन से,
कसहूं उपास आध पेट खाके हो स्वामीजी!
कहत भिखारी नाई, देहु खीस बिसराई,
उजरल घर के बसा दऽ मोर हो स्वामीजी!

('गबरघिचोर' से)

अठारह

भउजी सुनिलऽ मोर बात, नइखे नइहर रहल जात,

जाके करब वन में भजन हो भउजिया!
सेज मिरिगा के छाल, ओढ़ना भेड़ी के बाल,
जंगल में मंगल उड़ाइब हो भउजिया!
सारी गेरुआ के रंग, मलिके भभूत अंग,
गलवा के तुलसी के मलवा भउजिया!
छुरा से छिला के केस, धरबि जोगिन के भेस,
लेइब एक हाथ में सुमिरनी भउजिया!
नइहर से छूटल लाग, खाइब कंद-मूल-साग,
अनवां बउरावत बा बेइमानवां भउजिया!
पिउ-पिउ करब सोर, मन लागल बाटे मोर,
बांवां करवा में सोभी कमंडलवा भउजिया!
बानी पर धेयान दीहन, जंगल में खोज लीहन,
दयानिधि चरन का चेरी के भउजिया!
कहत भिखारी दास, कातिक से चार मास,
जाड़ में लेहब जलसयन भउजिया!
फागुन से महीना चारि, धूंई चउरासी जारि,
ताहि बीच में हरीगुन गाइब हो भउजिया!
रितु बरसात भर, करि-करि हर-हर,
गउरी-गनेस के पूजब हो भउजिया!

('ननद-भउजाई' से)

उन्नीस

अवध से अले चितचोरवा. हे सखि, चलऽ वर परिछे।
बाल-वृद्ध जुवती उठि धउरत, करि-करि के आपुस में सो खा। हे सखि....
साजि के सिंगार सब गहना पहिरि लऽ, नीमन लहंगा-पटोरवा।। हे सखि...

दही, अछत, गुर दउरा में धरि लेहु, भरि लेहु सेनुर सिन्होरवा।। हे सखि...

रथ पर समधी संगे बरिअतिया, लागत बा कइ एक करोरवा।। हे सखि....

हाथी प साधु सब माला लगवले, सिर चनन कइले बा खोरवा। हे सखि....

धावल आवत बाजा बजावत, नगर के कइले हंड़होरवा।। हे सखि...

अवध के लोग खखुआइन अइलन, खाए खातिर केरा-परोरखा।। हे सखि...

('राम विवाह' से)

बीस

अब पत राखऽ गोबरधनधारी, दुसमन खींचत चीर हमारी।

छत्री-बंस बिधंस हो गइलन, सभा में कलपति नारी।।

ससुर, भसुर, पति, देवर जाउत, सब बइठल मन मारी।।

पैर में पीर सरीर दुखित बा, मासिक करम लचारी।।

दुःसासन दुरदसा बनावत, दुरजोधन ललकारी।।

सब अपना सपना हो गइलन, नाहक जाल पसारी।।

धरती हमें पताल खिला दऽ, आपन करेजा फारी।।

कहत भिखारी हमारी माफ कर, सब अवगुन त्रिपुरारी।।

दया के सागर परम उजागर, अधम से लेहु उबारी।।

('द्रौपदी-पुकार' से)

भिखारी ठाकुर : संक्षिप्त जीवन-वृत्त

- **जन्म : फसली संवत् १२९५ ; पौष शुक्ल पंचमी, संवत् १९४४ तदनुसार १८ दिसंबर, सन् १८८७ (सोमवार) को दोपहर बाहर बजे।**
- **जन्म स्थान : सारण (बिहार) का कुतुबपुर गाँव।**
- पिता : दलसिंगार ठाकुर।
- माँ : शिवकली देवी।
- **बचपन का नाम : मनजउरवी ठाकुर (अप्रमाणित)।**
- **सन् १८९६ में पाठशाला में प्रवेश। आशुकवित्व-तुकबंदी की जन्मजात प्रतिभा।**
- **कुछ दिनों तक ४ गायों की चरवाही। लुक-छिपकर नाच में छोटी-मोटी भूमिकाएं।**
- गुरुदेव भगवान बनिया से अक्षर-ज्ञान। मातृभाषा के प्रति अनन्य अनुराग।
- किशोर वय में मतुरना के साथ विवाह।
- गाँव से भागकर खड्गपुर की यात्रा।
- मेदिनीपुर जिले में 'रामलीला' व 'यात्रा' देखकर मातृभाषा में नाटक रचने की प्रेरणा।
- १९१७ में तीस वर्ष की उम्र में 'विदेसिया' की रचना।
- गांव लौटकर नृत्यमंडली का गठन और नाच-तमाशे की शुरुआत।
- भोजपुरी में सर्वप्रथम लोकनाटक के प्रणेता और प्रस्तुतकर्त्ता।
- 'बिदेसिया' शैली के प्रवर्त्तक।
- जीवनकाल में तीन दर्जन पुस्तिकाओं का प्रकाशन [१९२८-१९६२ के बीच]।
- १९४४ में अंग्रेजी सरकार से 'राय बहादुर' का खिताब।
- बिहार सरकार के राज्यपाल के हाथों ताम्रपत्र द्वारा सम्मानित।
- कलाकारों के बीच 'मल्लिकजी' के नाम से मशहूर।

- महापंडित राहुल सांकृत्यायन के द्वारा 'भोजपुरी के शेक्सपियर' और 'अनगढ़ हीरा' का संबोधन।
- एक साथ ही लोकनाटककार, जनकवि, अभिनेता, नाट्य-निर्देशक, व्यवस्थापक, सूत्रधार एवं नर्तक।
- भोजपुरी फिल्म 'बिदेसिया' में अभिनय।
- १० जुलाई, १९७१ (शनिवार) को चौरासी वर्ष की उम्र में देहावसान। अपने गांव कुतुबपुर में ही निधन।

परिशिष्ट-३

भिखारी-साहित्य

☐ **भिखारी ठाकुर ग्रंथावली : भाग-१**

(पाँच नाटक)

१. बिदेसिया

२. भाई-विरोध

३. बेटी-वियोग

४. कलियुग प्रेम

५. राधेश्याम बहार

☐ **भिखारी ठाकुर ग्रंथावली : भाग-२**

(पाँच नाटक)

१. गंगा-स्नान

२. विधवा-विलाप

३. पुत्र-वध

४. गबरघिचोर

५. ननद-भउजाई

☐ अन्यान्य

- राम विवाह
- कृष्ण लीला
- द्रौपदी-पुकार
- नवीन विरहा
- भाँड़ के नकल
- भिखारी हरिकीर्तन
- जसोदा-सखी संवाद

- भिखारी जय हिन्द खबर
- भिखारी भजनमाला
- रामनाम माला
- नौ अवतार
- मातुभक्ति
- बुढ़साला
- सीताराम से परिचय
- आरती
- भिखारी शंका-समाधान
- स्फुट गीत एवं निर्गुण

परिशिष्ट-४

भिखारी एवं भिखारी-साहित्य पर प्रकाशित महत्वपूर्ण आलेख

१. **भिखारी ठाकुर** : व्यक्तित्व-कृतित्व (शोध-प्रबंध) : प्रो. तैयब हुसैन पीड़ित [अप्रकाशित]

२. **जनकवि भिखारी ठाकुर** : महेश्वर प्रसाद : प्रकाशक ; भोजपुरी परिवार, पटना (१९६४)

भूमिका : डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त

आलेख परिचय

- भिखारी का भक्त हृदय
- राम नाम की लौकिक प्रतिष्ठा
- राम विवाह और कृष्ण लीला
- उपालम्भ
- द्रौपदी-पुकार
- गंगा-स्नान और गंगा-दहार
- भाभी-विलाप
- बेटी-वियोग
- विधवा-विलाप
- ननद और भौजाई
- नीति, मर्यादावाद और उपदेश
- समाज और भिखारी
- न्याय
- विरह-वेदना
- भिखारी का कवि-हृदय
- भिखारी : एक नाटककार

- भोजपुरी भाषा और शैली में भिखारी
- भिखारी का स्थान

३. **भिखारी : महेश्वराचार्य ; प्रकाशक लोककलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम, कुतुबपुर (सारन) (१९७८)**

भूमिका : डॉ० रामनाथ पाठक 'प्रणयी'

आलेख

- गलती बहुत लउकते जाई
- **पटहा कवन अनमोल**
- **मइया पटकत बानीं माथ**
- **राम कहऽ सुगवा**
- **चितचोर रामजी दुलहा**
- लागल बा कुबरी के तीर
- धरती हमें पताल खिला दऽ
- रखिहऽ चरन के सरन
- जनम-जनम दीहऽ दरस
- उमरिया भरिया ना
- हो मोर देवर दुलरू
- छछनवलऽ जियरा
- ए मोर जाउत दुलरू
- अब होइबू लरकोर
- दुखवा समुझऽ हीरा
- पियऊ निसइल
- लहुरी ननदिया ए सइयां
- भीतरे बइठल माथ कमावऽ
- कहेले असले बात भिखारी
- अंकरी नहिं मिलत बा एहि बेरी
- टिकुली-चोली-सारी में
- सदा भिखारी रहत भिखार

४. **साहित्यिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में भिखारी :** अविनाश चन्द्र विद्यार्थी ; भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका, पटना ; जनवरी १९८४

५. **भिखारी ठाकुर :** नगेन्द्र प्रसाद सिंह, भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका (भिखारी ठाकुर जन्म शताब्दी विशेषांक) ; दिसंबर, १९८७

६. **भिखारी ठाकुर के लोकनाटक ; राम निहाल गुंजन :** भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका, दिसंबर, १९८७

७. **गंवई जिनगी का चिन्ता के चित्रकार : भिखारी** : प्रो. साधुशरण सिंह 'सुमन' भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका, दिसंबर, १९८७

८. **भिखारी ठाकुर के नाटकन में सामाजिक चेतना** : डॉ. तैयब हुसैन 'पीड़ित', भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका, दिसंबर, १९८७

९. **भिखारी ठाकुर के साहित्य में गीत-योजना** : डॉ० उषा वर्मा, वही

१०. जनकवि भिखारी आ **भोजपुरी** : डॉ. धीरेन्द्र बहादुर चांद, वही

११. सोनहग मनई रहस **भिखारी ठाकुर** : प्रो. ब्रजकिशोर, वही

१२. भिखारी का नाटक के **संप्रेषणीयता** : नगेन्द्र प्रसाद सिन्हा, वही

१३. भिखारी ठाकुर : अक्षयवर दीक्षित ('भोजपुरी के सपूत' में संकलित)।

१४. भोजपुरी के शेक्सपियर **भिखारी के गांव में** : भगवती प्रसाद द्विवेदी ; धर्मयुग (मुम्बई), १ जून, १९८६

१५. भिखारी की दिली तमन्ना **थी भिखारी ही बने रहने** की : भगवती प्रसाद द्विवेदी : कादम्बिनी (दिल्ली), जनवरी, १९८७

१६. लोकनाटककार भिखारी **ठाकुर का रचना संसार** : डॉ. शोभनाथ 'लाल' अभ्यंतर (लखनऊ) : लोकसाहित्य विशेषांक; जनवरी मार्च, १९८८

१७. भोजपुरी के अनगढ़ हीरा : **भिखारी** : भगवती प्रसाद द्विवेदी; हिन्दुस्तान (पटना), १८ दिसंवर, १९९३

१८. लोकजीवन का चितेरा **भिखारी ठाकुर :** डॉ. शंकर प्रसाद ; नवभारत टाइम्स (पटना) ; १८ दिसंबर, १९९४